संस्थापित १८६७ ई.

आर्य मित्र

साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

आजीवन शुल्क ₹ २,५००
वार्षिक शुल्क ₹ २००
(विदेश ५० डालर वार्षिक) एक प्रति ₹ ५.००

● वर्ष : १२६ ● : संयुक्तांक २३व २४ ● ०६ एवं १३ जून २०२४ (गुरुवार) ज्येष्ठ शुक्लपक्ष सप्तमी सम्वत् २०८१ ● दयानन्दाब्द २०० वेद व मानव सृष्टि सम्वत्: १६६०८५३१२५

उपस्थान मन्त्रों का विनियोग

डा० सुशील वर्मा

उपस्थान मन्त्रों का विनियोग पूर्वक अर्थ –

आचमन के द्वारा शरीर को, इन्दिय स्पर्श और मार्जन मन्त्रों से इन्द्रियों को, प्राणायाम से मन को अघमर्षण मन्त्रों से बुद्धि को और मनसापरिक्रमा मन्त्रों से चित्त को शुद्ध, शान्त एवं स्थिर करके, ऐसा साधक उस प्रभु की विविध शक्तियों की उपस्थिति अनुभव करता हुआ, अपने भीतर पापों व दुष्प्रवृत्तियों वाली बुद्धि को दूर करके उस परमात्मा की उपासना करते हुए मन को स्थिर बनाएं और उसके समीप बैठने का अधिकारी बने।

विनियोग-प्रभु को सर्वत्र व्यापक जानने के पश्चात् चित्त को शुद्ध शान्त एवं स्थिर करके उपस्थान मन्त्रों द्वारा उपासना करते हुए उपस्थान करे अर्थात स्वयं को ईश्वर के समीप बैठा अनुभव करें।

उपासना - 'उप' उपसर्ग पूर्वक 'रूठा' - गति निवृत्तौ धातु से उपस्थान शब्द सिद्ध होता है जिसका अर्थ है उप-समीप, स्थानः बैठना। अपने चित्त को स्थिर करके परमेश्वर के समीप बैठा हुआ स्वयं को अनुभव करना।

मनसापरिक्रमा मन्त्रों में चारों ओर व उपर नीचे ४ परिक्रमण कर ईश्वर के अनन्त ऐश्वर्य शक्ति, व्यापकता में आनन्द अनुभव कर रहा था। अब उसे आत्मा में स्थिर करता है और स्वयं को प्रभु के आश्रय में स्थिर करना है। उसके लिए स्वामी जी चार मन्त्रों का विनियोग किया है। ऋषि ने उपस्थान मन्त्रों का विनियोग उस परमात्मा के समीप बैठने से पहले उपस्थान अर्थात चित्त की गति को निवृत्ति के लिए प्रस्तुत किए हैं।

ओ३म् उद्वयं तमसस्परि स्वः
पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म
ज्योतिरुत्तमम्।। यजु.३५/१४

पहले मन्त्र में 'उत', उत्तर और उत्तम शब्द है। प्रकृति 'उत' है 'स्वः' अर्थात जीव उत्तर है और सूर्य अर्थात परमात्मा उत्तम है, यह क्रम सूक्ष्मता के कारण है। प्रकृति से जीवन सूक्ष्म है और जीव से सूक्ष्म परमात्मा है। अतः उत ज्योति को जानकर उत्तर ज्योति और फिर उत्तम ज्योति उस परमपिता परमात्मा को जानना आवश्यक है। यही उपासना की सीढ़ियां हैं। उत - तमसः परि, अर्थात हे परमात्मन् आप हम पर ऐसी कृपा कीजिए कि हम अन्धकार से उपर उठे। हमें प्रकृति का ज्ञान प्राप्त हो । तत्पश्चात् उत्तर-स्वः पश्यन्त, अर्थात हमे आत्म ज्ञान की प्राप्ति हो और हम आपके स्वः सुख स्वरूप की ओर अग्रसर हों और अन्त में उत्तम - देवं सूर्य अर्थात परमात्मा की अनुभूति ज्ञान से। हम उस सुखस्वरूप प्रभु को देखते हुए देवमार्ग से सूर्य देव ज्योतियों की ज्योति को प्राप्त करें।

देव देवत्रा देव शब्द की निरुक्ति 'देवा दानाद वा, दीपनाद वा, द्योतनाद वा, द्युस्थानो भवतीति वा (निरूक्त ७/१५) अर्थात दान देने से, प्रकाशित होने से, प्रकाशक होने से, द्यु स्थान में होने से 'देव' कहाता है।

जड़ और चेतन दो प्रकार के देव हैं। उनमें परमेश्वर ही सबसे प्रमुख एवं प्रथम देव है। देवत्रा अर्थात देवों में। अतः देवों में' भी वह देव महादेव देवाधिदेव।

सूर्यम्- उपासना प्रसंग में सूर्य परमेश्वर का वाचक है।

सूर्य - सुवति प्रेरयति, संचालयति, उत्पादयति चराचरमिति जो चर, अचर जगत को प्रेरित करता है, सन्चालित करता है, उत्पन्न करता है, वह सूर्य = परमात्मा है। क्यों कि ईश्वर ही सब चेतन और स्थावर पदार्थों में व्याप्त होकर उन्हें चला रहा है। अतः वही सबकी आत्मा है सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (यजु ७/४२)

अर्थ - हे परमेश्वर । हम सब अज्ञान अन्धकार से परे आनन्द स्वरूप और स्वयं प्रकाशस्वरूप, प्रलय के अनन्तर भी सदा वर्तमान देवों में भी देव-देवाधिदेव, अर्थात आनन्द और प्रकाश देने वालों के प्रकाशक, चराचर जगत के संचालक प्रेरक, सर्वोत्तम, ज्ञान स्वरूप आपको उत्कृष्ट श्रदा से प्राप्त हुए हैं।

दूसरा मन्त्र-

उदुत्यंजातवेदसं देवं वहन्ति
केतवः
दृशे विश्वाय सूर्यम्।। यजु.
३३/३१

संसार के समस्त पदार्थ उस परमेश्वर को जानने के लिए ऋषियों का कार्य कर रहे है "वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम् यहाँ परमात्मा का जातवेदः विशेषण है, अभिप्रायः कि उनसे जिसने वेदों का प्रकाश किया, वह कैसे प्राप्त होता है। क्योंकि वेदों को जाने बिना उस परमात्मा को नहीं जाना जा सकता। और जो प्रभु को जानना चाहता है उसको प्रभु जान लेते हैं। क्योंकि जातवेदाः - जातं वेत्तीति जातवेदाः (ऋग. ४/३३/११) अर्थात वह परमात्मा उत्पन्न हुए सकल जगत को जानता है। सर्वज्ञ है। केतवः किरणे अथवा पताकाएँ। सभी संसार के पदार्थ नियम-व्यवस्थाएँ, वेदवाणी उस रचियता ईश्वर की सत्ता का बोध कराती है। ये सभी बोधक चिन्ह है।

अर्थ- निश्चय से किरणें, पताकाएँ अथवा सृष्टि के सभी पदार्थ, सन्चालक नियम, गुण और वेदो की ऋचाएँ जो कि ईश्वर की सत्ता की बोधक है। उस जातवेदसम् प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान, प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ का वेत्ता, वेदो 'का रचयिता जो सर्वज्ञ परमेश्वर है, उसको और दिव्यगुणयुक्त देवाधि- देव (सूर्य) सकल जगत के उत्पादक एवं प्रकाशक ईश्वर को पूर्णरूप से दिखाने या ज्ञान कराने के लिए बुद्धियां भली भांति जानती हैं और प्राप्त कराती हैं।

उपस्थान मन्त्रों के पहले

क्रमशः.....७ पर

वेदामृतम्

बृहस्पतिर्नयतु दुर्गहा पुनर्नेषदघशंसाय मन्म।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिम् हन्, अथा करद् यजमानाय शंयोः।।
ऋग् १०.१८२.१

मैंने यज्ञयात्रा प्रारम्भ की है। मैं यजमान बना हूँ, महान् लक्ष्य अपने सम्मुख रखकर आगे बढ़ रहा हूँ। पर मार्ग में अनेक दुर्गम बाधाएँ आ रही हैं, पग-पग पर उनसे ठोकरें लगने का भय है। ऐसे समय में अपनी यात्रा का मार्गदर्शन बृहस्पति प्रभु को सौंप रहा हूँ। बृहस्पति बड़े-बड़े लोकों का अधिपति है, तो मुझ छोटे-से जीव का अधिपति क्यों न बनेगा ? वह ज्ञान का अधिपति है, तो मुझे ज्ञान की ज्योति क्यों न देगा? वह 'दुर्गहा' है, दुर्गम-से-दुर्गम बाधाओं को नष्ट करनेवाला है। वह मेरे मार्ग में आनेवाली भीषण बाधाओं के बीच में से चीरते हुए मुझे पार ले जाएगा।

जीवन की इस यज्ञ-यात्रा में बहुत-से लोग ऐसे मिलते हैं, जो मेरे सामने पाप-कर्म करने के लिए प्रलोभन उपस्थित करते हैं। वे स्वयं तो पाप-पंक में लिप्त होते ही हैं, अन्यों को भी पाप के झूठे मोहक रूप दिखाकर उस ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। ऐसे लोगों के लिए बृहस्पति प्रभु से मेरी प्रार्थना है कि वह उनके हृदयों में सत्य, ज्ञान और सुविचार को अंकुरित करे, जिससे न केवल वे अघ-शंसन का कार्य त्याग दें अपितु स्वयं भी 'अघ' से नाता तोड़कर निष्पाप बन जाएँ ।

यदि कोई अकार्य करने के कारण कभी मेरी अप्रशस्ति और निन्दा होने लगे तो बृहस्पति प्रभु मेरा उससे उद्धार करे। उससे उद्धार का उपाय यही है कि वह मुझसे ऐसे उत्तमोत्तम सत्कार्य करवाये कि लोग मेरी निन्दा को भूलकर मेरे गुणगान करने लगें । यदि कभी मैं दुर्मति से ग्रस्त हो जाऊँ तो बह उसे अपहत कर दे। वह मुझ यजमान-यात्री के जीवन में आनेवाली विपत्तियों का शमन करे और भविष्य में जिन विपत्तियों के आने की आशंका है उनके भय को दूर करे। इस प्रकार मेरी यज्ञ-यात्रा को निविघ्न और सफल बनाकर मुझे पूर्णकाम होने का सौभाग्य प्रदान करे। साभार-वेदमंजरी

आवश्यक सूचना

सभी पदाधिकारियों, प्रतिष्ठित, अन्तरंग, सहयुक्त सदस्यों, आदि को सूचित किया जाता है कि आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. की अन्तरंग सभा की बैठक दिनांक १६ जून, २०२४ दिन रविवार, तदनानुसार ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष दशमी संवत् २०८१ स्थान-महात्मा नारायण स्वामी आश्रम, रामगढ़ तल्ला, नैनीताल (उत्तरांचल) में समय प्रातः ११:०० बजे आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. लखनऊ के प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा जी की अध्यक्षता में सम्पन्न होगी।

एजेण्डा डाक द्वारा भेजा जा चुका है। कृपया समय से उपस्थित होकर बैठक को सफल बनावें।

पंकज जायसवाल
मंत्री
आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र.
लखनऊ

देवेन्द्रपाल वर्मा — प्रधान/संरक्षक
पंकज जायसवाल — मंत्री/सम्पादक
आर्य शिवशंकर वैश्य — प्रबन्ध सम्पादक

सम्पादकीय.....

श्रीमद्द यानन्द सरस्वती की प्रथम जन्म शताब्दी के शुभ अवसर पर फरवरी 1925 में

श्री पं० भगवद्दत्त जी बी.ए. का व्याख्यान

तदनन्तर साम गान और फिर श्रीयुत पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर लाहौर का ''संस्कार विधि में पठित संस्कारों'' के ऊपर एक व्याख्यान हुआ। आपने बतलाया कि स्वामी जी ने संस्कार विधि में प्रायः गृह्य सूत्रों का प्रमाण उद्धृत किया है। प्रत्येक वेद के साथ कितने ही गृह्यसूत्र हैं। परन्तु स्वामी जी ने अपने आपको प्रत्येक गृह्यसूत्र की प्रत्येक पंक्ति से बाध्य नहीं किया। जहां सिद्धान्त विरुद्ध कोई बात मिली आपने उसको छोड़ दिया। प्रक्षिप्त मान लिया। उन्होंने अपनी दिव्य ज्ञान ज्योति से उस सच्चाई को देख लिया जो उस समय लुप्त हो गई थी। और इसी से निर्भयता पूर्वक उसका परित्याग किया था। स्वामीजी बिना भली भांति सोचे विचारे न कुछ लिखते थे और न कहते थे। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि यों ही इसको प्रक्षिप्त कर दिया। उनसे मुक्ति के विषय में बहुत बार प्रश्न हुए, किन्तु उन्होंने कहाः ''इस विषय में मैं अपना मुंह अभी नहीं खोलूंगा। विचार करने के उपरान्त ही कुछ कहूंगा।'' पन्द्रह वर्ष के विचार के बाद उन्होंने इस विचार पर अपने विचार प्रकट किये थे। उनकी कोई बात उस समय निरर्थक न होती थी। आज लोग सभी शब्दों को लेकर उनकी संगति लगाते चलते हैं। उनमें से वैदिक सिद्धान्त सिद्ध करते हैं। स्वामी जी ने कभी इसकी चेष्टा नहीं की। जो अनर्गल जान पड़ा उसे निर्भय होकर प्रक्षिप्त कर दिया एवं छोड़ दिया। आज लोग यह भी कहते हैं कि स्वामी जी के ग्रन्थों का संशोधन होना चाहिये। मैं कहता हूं कि यह क्यों? आपको इतना भ्रम क्यों लगा है ? यदि आप ऋषि के बतलाये हुए सिद्धान्तों और सूत्रों पर विचार करें तो आपको संशोधन की आवश्यकता न पड़ेगी। कहीं-कहीं स्वामी जी ने कुछ प्रमाणों का अनुबाद मात्र ही कर दिया है। उदाहरणार्थ, कन्या के यज्ञोपवीत का विधान सप्रमाण नहीं है, बरन गृह्यसूत्र का अनुवाद मात्र है। आप इसे वहां देख सकते हैं। उन्होंने आपस्तम्ब गृह्यसूत्र अधिकता से उद्धृत किया है। विधवा विवाह के लिए उन्होंने मनु-प्रतिपादित अक्षत योनि विधवा विवाह की आज्ञा दी है। अन्य की नहीं ! अन्यथा करने वाले को शूद्र-कोटि में डाला है। परन्तु अब तो लोग मन-घड़न्त करने लगे हैं। कहीं-कहीं यज्ञ हवन के अन्त में ''ओं वसोः पवित्रमसि शतधारम्, वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम इत्यादि के उच्चारण के अन्त में घृत छोड़ने की परिपाटी प्रचलित हो पड़ी है। इसका प्रमाण कहीं नहीं। ऋषि ने कहीं नहीं लिखा। यों ही मनमाना कर रक्खा है। तब इस प्रकार की परिपाटी डालकर संशोधन के प्रश्न को उठाना महा भूल है' ऋषि के सिद्धान्तों का मनन कीजिये । संस्कारों का महत्व समझिये ।

श्री पं० अयोध्याप्रसाद जी (कलकत्ता) का व्याख्यान–

आर्य पुरुषो एवं आर्य देवियो ! हमारे वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं। कितनी ही पुस्तकें इलहामी (खुदाई) वा ईश्वरीय बतलाई जाती हैं परन्तु यह मिथ्या कल्पना अपने मत के फैलाने के लिए ही है। सच्चे ईश्वरीय ज्ञान के भण्डार हमारे वेद ही हैं।

जिस प्रकार दयालु परम पिता परमेश्वर ने हमारे लिए इस नाना-भोग-विचित्रा धरित्री और विश्व का निर्माण किया है, जिस प्रकार जगदीश्वर ने इस भौतिक सृष्टि की रचना की है। उसी प्रकार उसने ज्ञान की भी रचना की है। यदि हमारे पास पीने के लिये पानी और खाने के लिये अन्न न होता तो हम इतनी सृष्टि न कर पाते। इसी प्रकार यदि ज्ञान ईश्वर दत्त न हो तो हम ज्ञानी नहीं बन सकते थे । ज्ञान की निरवच्छिन्न धारा सर्वत्र बह रही है। प्रत्येक भूत के साथ ज्ञान उपस्थित है। सृष्टि में सर्वत्र ज्ञान विद्यमान है तथा वही परमेश्वरीय ज्ञान है। भौतिक जगत् को रचकर उसका ज्ञान रूप से अनुवाद स्वरूप ही तो हमारे बेद हैं। वेद कहते हैं ज्ञान को। सारा विश्व प्लेटो (Plato) बार्कले (Barkley) और ह्यूम (Hume) के मत से विचार ही रूप है। विचार न हो तो विश्व कहां है।

पदार्थों के गुणों का ज्ञान-भंडार ही हमारा ऋग्वेद है एवं उनसे कार्य सिद्ध करने के लिये कर्म का प्रतिपादक हमारा यजुर्वेद है। और फिर उस परमात्म-तत्व का गुणानुवाद जिसने विश्व बनाया, साथ में किया गया है। ये तीनों संश्लेषणात्मक ज्ञान हैं, सिन्थेटिक (**Synthetic**) ज्ञान हैं, तथा अथर्व वेद इन्हीं का विश्लेषणात्मक ज्ञान है, ऐनेलिटिक (**Analytic**) ज्ञान रूप है। इसी लिए ऋग्वेद का आरम्भिक मन्त्र 'अग्नि मीले पुरोहितं अग्नि इत्यादि द्रव्यों का ज्ञान प्राप्त करने की प्रेरणा करता हुआ अन्त में कर्म की याद दिलाता है। क्योंकि ज्ञान के पश्चात् कर्म आता है। इसी प्रकार यजुर्वेद ''इवे त्योऽर्ने वा से, जो कर्मपरक है, आरम्भ करके, 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि' में ही समाप्त होता है। इसी प्रकार सामवेद को श्रेष्ठ उपासना रूप कर्म के लिये ''अग्न आयाहि वीतये ''से आरम्भ करता है। इस प्रकार देखने से इस सूक्त के आगे यही क्यों आया, अग्नि सूक्त के आगे वायु सूक्त ही क्यों आया, इसके भी कारण मिलेंगे। अतः इस प्रकार संश्लेषणात्मक वा सिन्थेटिक एनेलिटिक ज्ञान अथर्ववेद में वर्णित हैं। हमारे वेद ही ईश्वरीय-ज्ञान ग्रन्थमाला है इसमें कोई सन्देह नहीं कर सकता है।

गतांक से आगे.....

सत्यार्थ प्रकाश

अथ चतुर्दशसमुल्लासारम्भः

अथ यवनमतविषयं व्याख्यास्यामः

४९-निश्चय अल्लाह की ओर से दीन इसलाम है॥ - पं० १। सि० ३० सू० ३। आ० १९०

(समीक्षक) क्या अल्लाह मुसलमानों ही का है औरों का नहीं? क्या तेरह सौ वर्षों के पूर्व ईश्वरीय मत था ही नहीं? इसी से यह कुरान ईश्वर का बनाया तो नहीं किन्तु किसी पक्षपाती का बनाया है॥ ४९ ॥

५०-प्रत्येक जीव को पूरा दिया जावेगा जो कुछ उसने कमाया और व न अन्याय किये जायेंगे।। कह या अल्लाह तू ही मुल्क का मालिक है जिसको चाहे देता है, जिससे चाहे छीनता है, जिसको चाहे प्रतिष्ठा देता है, जिसको चाहे अप्रतिष्ठा देता है। सब कुछ तेरे ही हाथ में है, प्रत्येक वस्तु पर तू ही बलवान् है। रात को दिन में और दिन को रात में पैठाता है और मृतक को जीवित से जीवित को मृतक से निकालता है और जिसको चाहे अनन्त अन्न देता है। मुसलमानों को उचित है कि काफिरों को मित्र न बनावें सिवाय मुसलमानों के जो कोई यह करे बस वह अल्लाह की ओर से नहीं। कह जो तुम चाहते हो अल्लाह को तो पक्ष करो मेरा। अल्लाह चाहेगा तुम को और तुम्हारे पाप क्षमा करेगा, निश्चय ही करुणामय है।

- मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० २५। २६ । २७ । २८ । २९॥

(समीक्षक) जब प्रत्येक जीव को कर्मों का पूरा-पूरा फल दिया जावेगा तो क्षमा नहीं किया जायगा। और जो क्षमा किया जायगा तो पूरा फल नहीं दिया जायगा और अन्याय होगा जब विना उत्तम कर्मों के राज्य प्रतिष्ठा देगा तो भी अन्यायी हो जायगा और विना पाप के राज्य और प्रतिष्ठा छीन लेगा तो भी अन्यायकारी हो जायगा। भला। जीवित से मृतक और मृतक से जीवित कभी हो सकता है? क्योंकि ईश्वर की व्यवस्था अछेद्य-अभेद्य है। कभी अदल-बदल नहीं हो सकती। अब देखिये पक्षपात की बातें कि जो मुसलमान के मजहब में नहीं हैं उन को काफिर ठहराना। उन में श्रेष्ठों से भी मित्रता न रखने और मुसलमानों में दुष्टों से भी मित्रता रखने के लिये उपदेश करना ईश्वर को ईश्वरता से बहिः कर देता है। इस से वह कुरान, कुरान का खुदा और मुसलमान लोग केवल पक्षपात अविद्या के भरे हुए हैं। इसीलिये मुसलमान लोग अन्धेरे में हैं। और देखिये मुहम्मद साहेब की लीला कि जो तुम मेरा पक्ष करोगे तो खुदा तुम्हारा पक्ष करेगा और जो तुम पक्षपातरूप पाप करोगे उस की क्षमा भी करेगा। इस से सिद्ध होता है कि मुहम्मद साहेब का अन्तःकरण शुद्ध नहीं था। इसीलिये अपने मतलब सिद्ध करने के लिये मुहम्मद साहेब ने कुरान बनाया वा बनवाया ऐसा विदित होता है॥ ५०॥

क्रमशः अगले अंक में...

दयानन्द शास्त्रार्थ प्रश्नोत्तर-संग्रह

ईश्वरीय ज्ञान अनादि है

११ सितम्बर, १८८२, तदनुसार भादों बदी चौदश, संवत् १९३९, सोमवार

दूसरा प्रश्न-

प्रश्न मौलवी - समस्त संसार के मनुष्य एक जाति के हैं अथवा कई जातियों के ?

उत्तर स्वामी-जुदी-जुदी जातियों के हैं।

मौलवी- किस युक्ति से ?

स्वामी-सृष्टि की आदि में ईश्वरीय सृष्टि में उतने जीव मनुष्य शरीर- धारण करते हैं कि जितने गर्भ सृष्टि में शरीर धारण करने के योग्य होते हैं और वे जीव असंख्य होने से अनेक हैं।

मौलवी-इसका प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है ?

स्वामी-अव भी सब ही अनेक माँ-बाप के पुत्र हैं।

मौलवी- इसके विश्वसनीय प्रमाण कहिये ।

स्वामी- प्रत्यक्षादि आठों प्रमाण ।

मौलवी- वे कौन से हैं?

स्वामी- प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, ऐतिह्य, संभव, उपमान, अभाव, अर्थापत्ति ।

मौलवी- इन आठों में से एक-एक का उदाहरण दे कर सिद्ध कीजिये ।

प्रश्न मौलवी- ये जो आकार मनुष्यों के हैं, इनके शरीर एक प्रकार के बने अथवा भिन्न-भिन्न प्रकार के बने ?

उत्तर स्वामी-मुख आदियों में एक से हैं, रंगों में कुछ भेद है।

मौलवी-किस-किस रंग में क्या-क्या भेद है ?

स्वामी-छोटाई-बड़ाई में किंचिन्मात्र अन्तर है।

मौलवी-यह अन्तर एक देश अथवा एक जाति में एक ही प्रकार के हैं अथवा भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार के ?

स्वामी-एक-एक देश में अनेक हैं। जैसे एक माँ-बाप के पुत्रों में भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं।

मौलवी-हम जब संसार की अवस्था पर दृष्टिपात करते हैं तो आपके कथनानुसार नहीं पाते। एक ही देश में कई जातियाँ जैसे हिन्दी, हब्शी, चीनी, इत्यादि देखने में पृथक् पृथक् विदित होती हैं अर्थात् चीन वाले दाढ़ी नहीं रखते और तिकोने मुँह के होते हैं। हब्शी, मलन्गई, चीनी, तीनों की आकृतियाँ परस्पर नहीं मिलतीं। एक ही देश में यह भेद क्योंकर है ?

स्वामी-उत्तमें भी अन्तर है।

मौलवी- दाढ़ी न निकलने का क्या कारण है ?

स्वामी-देशकाल और माँ-बाप आदि के शरीरों में कुछ-कुछ भेद हैं। समस्त शरीर रज वीर्य्य के अनुसार बनते हैं। वात, पित्त, कफ आदि धातुओं के संयोग वियोग से भी कुछ भेद होते हैं।

मौलवी- हम समस्त संसार में तीन प्रकार के मनष्य देखते हैं जिनका विभाजन इस प्रकार है- दाढ़ी वाले, बिना दाढ़ी के, घूँघरू बाल वाले । दाढ़ी वाले भारतीय, फिरंगी, अर्वी, मिश्री आदि। वे दाढ़ी वाले चीनी, जापानी, कैमिस्टका के। घुंघरू वाल वाले हब्शी। इन तीनों की बनावट और प्रकार में बहुत-सा भेद है। एक दूसरे से नहीं मिलता और यह भेद आपके कथनानुसार ऊपर वाले कारणों से है। यदि एक देश के रहने वाले ये तीनों प्रकार के मनुष्य दूसरे देश में जाकर रहें तो कभी भेद नहीं होता। जाति समान है। इस अवस्था में संसार के मूलपुरुष आपके कथनानुसार तीन हुऐ, अधिक नहीं।

स्वामी-भोटियों को किस में मिलाते हैं। वे किसी से नहीं मिलते। इस प्रकार तीन से अधिक सम्पत्ति विदित होती हैं।

मौलवी- जैसा भेद इन तीनों में है वैसा दूसरे में नहीं। तीनों जातियों का परस्पर मिल जाना इस थोड़े भेद का कारण है परन्तु इन तीनों की आकृति एक दूसरे से नहीं मिलती।

आर्य समाज का हिन्दूकरण

लाला लाजपतराय की चेतावनी

ऋषि दयानन्द ने जिस सार्वभौम वैदिक धर्म की पुनः स्थापना का आन्दोलन प्रारम्भ किया था, उसकी एक विशेषता यह थी कि उसे उन्होंने एक प्रचारक धर्म अर्थात् Proselytizing Religion का रूप देने का प्रयत्न किया। जीवन भर वे इसी वैदिक धर्म के प्रचार और प्रसार के लिए संघर्ष करते रहे । उपदेश, शास्त्रार्थ, साहित्य सृजन तथा धर्म प्रचार के प्रायः सव साधनों का उन्होंने बड़े प्रभावशाली ढंग से उपयोग किया। आर्य समाज की स्थापना के पीछे भी उनका यही उद्देश्य था और इसीलिए उन्होंने आर्य समाज के तीसरे नियम में आदेश दिया है कि वेद को न केवल पढ़ना बल्कि उसे पढ़ाना और सुनना-सुनाना भी सब आर्यों का परम धर्म है।

अपने प्रारम्भिक युग में इसलिए आर्य समाज और उसकी शिक्षण संस्थाएँ संगठित रूपं से धर्म प्रचार का कार्य करती थी। प्रतिनिधि सभाओं और यहाँ तक कि सार्वदेशिक तथा परोपकारिणी सभा का भी यही मुख्य कार्य था। संगठित प्रचार के परिणामस्वरूप ही आर्य समाज को न केवल स्वदेशी बल्कि विदेशी विद्वानों ने १९ वीं सदी का एक अत्यन्त प्रभावशाली और क्रान्तिकारी आन्दोलन कहकर उसके भविष्य के संबंध में अनेक आशाएँ और अपेक्षाएँ व्यक्त की थी।

वर्तमान खेद जनक स्थिति :

किन्तु अपने १२० वर्ष के अल्पकाल में ही आर्य समाज ने अपनी प्रारम्भिक तेजस्विता और प्रभाव को इतना शिथिल बना दिया है कि उसके भविष्य के बारे में की जाने वाली आशाओं की पूर्ति तो दूर आज स्वयं उसके वर्तमान के संबंध में भी निराशा उत्पन्न होना लगी है।

हिन्दू विचारधारा का दुष्प्रभाव :

आर्य समाज की वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में अनेक विश्लेषण किए गए हैं और किए जा रहे हैं। उन सबका उल्लेख करना यहाँ अभिप्रेत नहीं है, किन्तु आर्य समाज की वर्तमान स्थिति का एक मुख्य कारण यह है कि अब आर्य समाज को प्रायः वर्तमान हिन्दू धर्म का ही एक सुधरा हुआ सम्प्रदाय माना जाने लगा है। स्वयं आर्य समाज का नेतृत्व भी इस दुःखद परिवर्तन के प्रति सर्वता उदासीन है।

जिसे हम हिन्दू धर्म कहते हैं उनके अनुयायी तथा यहाँ तक कि प्रशंसक और समर्थक भी यह मानते हैं कि हिन्दू धर्म विभिन्नताओं में एकता का उदाहरण है। अनेक परस्पर विरोधी धार्मिक मान्यताओं, रीति-रिवाजों, देवी-देवताओं पर आधारित हिन्दू धर्म यह दावा तक नहीं कर सकता कि अन्य संगठित और प्रचारात्मक धर्मों की तुलना में उसमें कोई ऐसी विशेषताएं हैं, जिससे आकर्षित होकर अन्य धर्मों के अनुयायी उसे स्वीकार करें। स्वयं महात्मा गाँधी जैसे हिन्दू धर्म के आधुनिक प्रशंसक और समर्थक यह कहते रहे हैं कि हिन्दू धर्म एक प्रचारक धर्म नहीं हैं और न ही हो सकता है, क्योंकि वह अन्य धर्मों को समान ही नहीं सत्य भी मानता है। इसलिए अन्य धर्मों के अनुयायियों को अपने धर्म में दीक्षित करने के उद्देश्य से उसके अनुयायियों को प्रचार करने की न आवश्यकता है और न उसकी कोई उपयोगिता । यही कारण है कि अफ्रीका तथा मध्य एशिया के मूल निवासी केवल ईसाई और मुसलमान ही बनते हैं हिन्दू नहीं।

आर्य समाज हिन्दू धर्म सम्प्रदाय नहीं है:

ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दू धर्म और समाज के प्रति अपने विशेष संबंधों के कारण स्वयं आर्य समाज भी इस दृष्टिकोण का शिकार होता जा रहा है। एक समय था कि ऋषि दयानन्द के आदेशानुसार हम अपने को केवल आर्य कहने का आग्रह करते थे। अब अधिकांश आर्य समाज के सदस्यों को इस नाम से कोई विशेष लगाव या मोह नहीं रहा । नाम का ही प्रश्न होता तो विशेष चिन्ना की बात नहीं थी किन्तु नाम के साथ हमने धार्मिक, सामाजिक सब क्षेत्रों में हिन्दू धर्म की उन विशेष विचारधाराओं को भी स्वीकार कर लिया है जिनका ऋषि दयानन्द ने निषेध किया था और वह भी इसलिए कि स्वयं हिन्दू समाज के हास और पतन के लिए भी धर्म और समाज के नाम पर प्रचलित यह कुरीतियाँ और अन्धविश्वास मुख्यतः उत्तरदायी थे । दूसरे शब्दों में स्वयं हिन्दुओं के पुनर्जीवन के लिए उनका आर्य जैसा नवीन नामकरण और उसके अनुरूप उनके धार्मिक, सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन, ऋषि दयानन्द आवश्यक समझते थे । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आर्य समाज के वे लोग जो अब भी अपने को हिन्दुओं का रक्षक और समर्थक समझकर उनमें विलीन रहना चाहते हैं वे भी वास्तव में स्वयं अपने इस लक्ष्य के विपरीत कार्य कर रहे हैं। हिन्दुओं के गत सदियों कि इतिहास से यह बात स्पष्ट है जिन मूर्तिपूजा आदि धार्मिक अंधविश्वासो तथा जाति-पाति, छुआछूत जैसी विभागक सामाजिक कुरीतियों के कारण उनका पतन हुआ उसका निराकरण किए विना एक नवीन हिन्दू राष्ट्र की कल्पना असम्भव है। इसलिए स्वयं हिन्दू समाज के हित में भी यह आवश्यक है कि आर्य समाज अपने प्रारम्भिक वास्तविक स्वरूप और पृथक अस्तित्व को सुरक्षित रखकर हिन्दू समाज को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न करे, जैसा एक डाक्टर अपने को रोगी से पृथक् रखकर उसका उपचार करता है। अन्यथा वह हिन्दू धर्म का एक सुधारक सम्प्रदाय वन कर रह जाएगा।

लाला लाजपत राय की चेतावनी :

हिन्दू एकता और संगठन के प्रबल समर्थक और आर्य समाज के मूर्धन्य नेता तथा विचारक स्वर्गीय लाला लाजपतराय ने हिन्दुओं के साथ आर्य समाज का क्या सम्बन्ध हो इसका विवेचन करते हुए अपनी प्रसिद्ध अंग्रेजी पुस्तक ''आर्य समाज'' के १९६७ के संस्करण के पृष्ठ १८५ पर लिखा है

"The Arya Samaj can have no loftler or nobiler ambition than that its entire teaching or atleast its spirit may be a adopted by Hinduism as it own but^^- However we should not like the Arya Samaj to be lost in the vast sea of Hinduism- We should like it to exist for Hindism first and for the rest of the World afterwards but we should deplore its being merged in Hinduism or any other ism- Its independence is the charter of its existence and of its usefulness. Its members have no hesitation and will never have any, in staking their all for the defence of Hindu community but the strength of an advocate lies in his independence inspite of indentifying himself with the cause of his client-

अर्थात् आर्य समाज के लिए इससे अधिक अन्य कोई महत्वाकांक्षा नहीं हो सकती कि हिन्दू धर्म आर्य समाज के समस्त सिद्धान्तों को या कम से कम उनकी भावनाओं की अपनी स्वयं की मानकर स्वीकार कर ले, किन्तु हम यह कभी नहीं चाहेंगे कि आर्य समाज हिन्दू धर्म के विशाल समुद्र में खो जाए। आर्य समाज का अस्तित्व सबसे पहले हिन्दुओं के लिए और बाद में संसार के लिए बना रहे ऐसा हम चाहते हैं किन्तु हमें खेद होगा यदि वो हिन्दू धर्म या अन्य किसी में विलीन हो जाए। आर्य समाज की स्वतन्त्रता ही उसके अस्तित्व और उपयोगिता का आधार है। उसके सदस्य हिन्दू समाज की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व दाँव पर लगाने के लिए कभी संकोच नहीं करेंगे किन्तु यह स्पष्ट है कि अपने मुवक्किल के हित को अपना हित मानने वाले वकील की शक्ति भी उके पृथक अस्तित्व में निहित होती है।''

आर्य समाज और हिन्दू :

आर्य समाज का हिन्दू धर्म या हिन्दू समाज से क्या सम्बन्ध हो इसका इससे अधिक सुन्दर और विचार पूर्ण विवेचन और नहीं हो सकता । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जो हिन्दुत्व निष्ठ व्यक्ति आर्य समाज के संगठन और नेतृत्व से जुड़े हुए हैं उन्हें भी यह स्वीकार करना होगा कि आर्य समाज का पृथक् अस्तित्व और पहचान न केवल आर्य समाज के अपितु स्वयं उनके स्वप्न के हिन्दू संगठन या हिन्दू राष्ट्र की कल्पना को साकार करने के लिए भी आवश्यक है।

आर्य समाज का भविष्य :

आर्य समाज की वर्तमानं शिथिलता का मेरी दृष्टि में यही सबसे बड़ा कारण है कि हम लाला लाजपतराय द्वारा की गई उपर्युक्त भविष्यवाणी और चेतावनी की सर्वथा उपेक्षा कर रहे हैं।

स्वर्गीय लाला लाजपतराय की जिस चेतावनी की ओर ऊपर ध्यान आकर्षित किया है, उसमें उन्होंने आर्य समाज का हिन्दू समर्थक और हिन्दू रक्षक होने की नीति का अनुमोदन करते हुए यह आशंका व्यक्त की है कि यदि हिन्दुओं के प्रति अपनी सद्भावना के वशीभूत होकर आर्य समाज में अपने आपको हिन्दू धर्म के विशाल समुद्र में विलीन होने से न बचाया तो न उसका अस्तित्व सुरक्षित रहगा और न ही उसकी उपयोगिता। उन्होंने तो यहाँ तक कहा है कि-

"While in this increasing friendliness with ortho do Hinduism lies the strength of the Arya Samaj but there in also lurks the danger of a deterioration of standards of reform-"

अर्थात् जहाँ हिन्दुओं के साथ बढ़ती हुई मित्रता आर्य समाज के प्रभाव का द्योतक है, वहीं उसमें यह खतरा भी निहित है कि उसके कारण आर्य समाज के सुधार की गति मन्द पड़ सकती है। लालाजी की यह भविष्यवाणी कितनी सहा सिद्ध हो रही है, यह हम आर्य समाज के धार्मिक और सामाजिक सुधार के कार्यक्रम की वर्तमान शिथिल गति से देख सकते हैं। राजनीतिक और सामाजिक जिन कारणों से आर्य समाज अब केवल एक हिदू सुधार आन्दोलन समझा जाने लगा है उन्हीं कारणों के परिणामस्वरूप आर्य समाज हिन्दू धर्म के मूर्ति-पूजा आदि धार्मिक अन्धविश्वासों तथा जाति-पांति आदि सामाजिक कुरीतियों का उतनी तीव्र दृढ़ता और कारगर ढंग से निषेध नहीं करता, जितना वह अपने प्रारम्भिक स्वर्ण युग में करता था। यदि यह कहा जाए तो भी अतिशयोक्ति न होगी कि अपने इन प्रारम्भिक क्रान्तिकारी सुधारों के सम्बन्ध में भी अब उसने कट्टरपंथी हिन्दुओं से समझौता कर लिया है और वह भी न केवल अपनी राजनैतिक स्वार्थ सिद्धी के लिए किया जा रहा है बल्कि इसलिए भी कि इन तथा ऋषि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित अन्य क्रान्तिकारी मान्यताओं के सम्बन्ध में स्वयं उसके अपने अनुयायियों का विश्वास और निष्ठा कमजोर होती जा रही है।

वैदिक और हिन्दू धर्म :

जैसा हमने प्रारम्भ में निवेदन किया था कि ऋषि दयानन्द अपनी मान्यता के वैदिक धर्म कहा जाता है, उसमें और आर्य समाज के वैदिक धर्म में ही एक प्रमुख अन्तर है कि जहाँ हिन्दू धर्म अपनी तथा कथित उदारता और सहिष्णुता के आधार पर सब धर्मों की समानता पर विश्वास करता है, वहाँ आर्य समाज इस्लाम और ईसाई धर्मों के समान अपनी धार्मिक मान्यताओं का प्रचार और प्रसार करने में विश्वास रखता है और परिणामस्वरूप अन्य धर्मों के अनुयायियों को अपने में दीक्षित करने का प्रयत्न करता है। महात्मा गाँधी तक आर्य समाज के शुद्धी आंदोलन को हिन्दू धर्म की विशेषता और उदारता के प्रतिकूल समझकर उसका विरोध करते थे। जबकि अनेक समकालीन विदेशी समीक्षक इसे आर्य समाज की हिन्दू धर्म को एक बड़ी देन मानते थे। केनेथ जोन्स ने ''आर्य धर्म'' नामक अपनी पुस्तक में लिखा है. कि-

"He (Swami Dayanand) started the system of 'Shuddhi' by which persons belonging to other religions could find place in and adopt Hinduism-

-अर्थात् स्वामी दयानन्द ने शुद्धि की व्यवस्था प्रारम्भ की जिसके द्वारा अन्य धर्मों के लोग हिन्दू धर्म में आकर उसे अपना धर्म स्वीकार कर लें। आगे पृष्ठ १२९ पर पुनः लेखक लिखता हैं कि- ''To

क्रमशः.....६ पर

दयानन्द-दर्शन

-आचार्य उदयवीर शास्त्री

दार्शनिक क्षेत्र में अनेक शताब्दियों से यह भावना पनपती रही है कि न केवल वैदिक-अवैदिक दर्शनों में, अपितु छः वैदिक दर्शनों में भी परस्पर विरोध है। वर्तमान युग में इस अवांछनीय विचारधारा को सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द ने चुनौती दी और दार्शनिक जगत् में इस क्रान्तिकारी तथ्य को उजागर किया, दर्शनों में कोई परस्पर विरोध नहीं, वे वस्तु तत्त्व के प्रतिपादन में एक-दूसरे के पूरक हैं।

उस क्रान्तदर्शी महर्षि ने अपने किसी अन्य दर्शन का प्रवचन नहीं किया, न कहीं यह संकेत ही दिया है कि अन्य कोई दर्शन अपेक्षित है। ऋषि ने इन्हीं प्रसिद्ध छः वैदिक दर्शनों को प्रामाणिक माना है और उन्हीं में अपनी आस्था प्रकट की है। वेदों पर आधारित अपने दार्शनिक विचारों को ऋषिवर ने इन्हीं दर्शनों का आश्रय लेकर अपनी रचनाओं में अपेक्षित प्रसंग आने पर अभिव्यक्त किया है। अनेक स्थलों पर वे विचार ऐसे हैं, जो दर्शनों की मध्यकालिक व्याख्याओं में उपलब्ध नहीं होते। इससे स्पष्ट होता है कि ऋषि दयानन्द दर्शनों की वास्तविक भावनाओं को समझने में उन भाष्यों से अभिभूत नहीं थे। उन्होंने अपनी स्वतन्त्र प्रतिभा एवं गुरु परम्परा से उन रहस्यमय गूढ़ तथ्यों को समझकर अपने दार्शनिक विचारों में उजागर किया है, जो मध्यकालिक दार्शनिक अखाड़ेबाजी की काली-पीली अन्धेरी (आंधी) में ओझल हो चुके थे।

इससे संकेत मिलता है कि ऋषि दयानन्द का कोई अतिरिक्त दर्शन नहीं है, वह इन्हीं दर्शनों को उस प्रकार व्याख्यात करने का अभिलाषी रहा, जो पारस्परिक विरोधी भावनाओं से अछूता हो। तत्त्वदर्शी ऋषि कभी अतथ्य बात नहीं कहता, क्योंकि वह तत्त्वार्थबोधन में आप्त होता है। दर्शनों के प्रवक्ता ऋषि ऐसे ही साक्षात् कृतधर्मा 'आप्त' पुरुष थे, तब उनके कथनों में विरोध की सम्भावना कैसे हो सकती है?

भारतीय दर्शन वस्तुतः वैदिक-अवैदिक दो भागों में विभक्त माना जाता है। अवैदिक दर्शनों में चार्वाक-जैन-बौद्ध दर्शन है। वैदिक दर्शनों में छः की गणना की जाती है-न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त। इनके यथाक्रम दो-दो के युगल को समान शास्त्र कहा जाता है, जो प्रतिपाद्य विषय की समानता अथवा सहयोगिता पर आधारित है। इनको वैदिक दर्शन इस आधार पर कहा जाता है कि इनमें आत्मसम्बन्धी तथा अनात्मसम्बन्धी वैदिक सिद्धान्तों का दार्शनिक रीति पर विवेचन एवं प्रतिपादन किया गया है। इन सभी दर्शनों में वेदों को समानरूप से प्रमाण माना गया है जबकि अवैदिक दर्शनों में ऐसा नहीं है। आत्म-अनात्मसम्बन्धी तत्त्वों से तात्पर्य स्वतन्त्र जड़- चेतन तत्त्वों की सत्ता स्वीकार करने से है।

अनेक आधुनिक विचारक वैदिक-अवैदिक दर्शनों को 'आस्तिक-नास्तिक दर्शन' के नाम से प्रस्तुत करते हैं। उक्त न्याय आदि छः आस्तिक दर्शन हैं तथा जैन, बौद्ध, चार्वाक नास्तिक दर्शन, परन्तु हरिभद्र सूरि ने अपनी रचना 'षड्दर्शन समुच्चय' में इसका व्यतिक्रम किया है। उसने जिन छः दर्शनों का अपने ग्रन्थ में विवरण प्रस्तुत किया है, उनके नाम हैं-आर्हत (जैन), बौद्ध, न्याय, वैशषिक, सांख्य, मीमांसा। इनमें वैदिक छः दर्शनों में से 'योग' तथा 'वेदान्त' का नाम नहीं है। प्रस्तुत ग्रन्थ के उपसंहार भाग से यह स्पष्ट होता है कि हरिभद्र सूरि किन दर्शनों को आस्तिक तथा किनको नास्तिक मानता है। ग्रन्थ के अन्तिम भाग में उक्त छः दर्शनों का विवरण प्रस्तुत करने के अनन्तर यह आशंका प्रस्तुत की गई है कि अनेक विद्वान् न्याय और वैशेषिक दर्शनों को एक ही दर्शन मानते हैं, उनके मत में यह विवरण पांच दर्शनों का ही रह जाता है, तब यह रचना 'षड्दर्शन समुच्चय' कैसे कही जा सकती है?

छठे दर्शन मीमांसा का विवरण प्रस्तुत करने के अनन्तर ग्रन्थकार ने कहा-

जैमिनीयमतस्यापि संक्षेपोऽयं निवेदितः ।
एवमास्तिकवादानां कृतं संक्षेपकीर्तनम् ।।७७।।

इसके अनन्तर छः संख्या पर आशंका प्रस्तुत की गई-

नैयायिकमतादन्ये भेदं वैशेषिकैः सह।
न मन्यन्ते मते तेषां पंचौवास्तिकवादिनः।।७८।।

इसका समाधान करते हुए छः संख्या की पूर्ति के लिये ग्रन्थकार कहता है-

षष्ठदर्शनसंख्या तु पूर्यते तन्मते किल।
लोकायतमतक्षेपात् कथ्यते तेन तन्मतम्।।७९।।

छठे दर्शन की पूर्ति उनके मत में लोकायत (चार्वाक) दर्शन को सम्मिलित कर लेने से हो जाती है, अतः उस दर्शन का कथन अब कर देते हैं।

हरिभद्र सूरि के उक्त श्लोकों में रेखाङ्कित पद विशेष ध्यान देने योग्य है। अपने ग्रन्थ में विवृत्त दर्शनों को वह 'आस्तिकवादी दर्शन' बता रहा है जिनको हम 'नास्तिक दर्शन' कहते हैं-जैन, बौद्ध, चार्वाक, हरिभद्र सूरि उनको 'आस्तिक दर्शन' मानता है। इससे स्पष्ट होता है, आस्तिक और नास्तिक पदों को प्रत्येक वर्ग यथाक्रम अपने और पराये के लिये प्रयुक्त करता रहा है। इसलिए किसी नियत वर्ग को बताने में इन पदों का प्रयोग उपयुक्त नहीं है।

प्रसंगवश यह विचारणीय है कि हरिभद्र सूरि ने उन दर्शनों को अपने वर्ग में किस आधार पर गिना है, जिनको हम आस्तिक दर्शन कहते हैं। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, मीमांसा को जिस आधार पर हम आस्तिक दर्शन कहते हैं, निश्चित ही वह आधार सूरि के आस्तिक दर्शन का नहीं है। अन्यथा सभी दर्शन आस्तिक कहे जाते अथवा सभी नास्तिक। वस्तुतः हरिभद्र के आस्तिकवाद का आधार 'अनीश्वरवादी' होना है। दर्शनों के मध्यकालिक व्याख्याकारों ने सांख्य, मीमांसा, वैशेषिक आदि को निरीश्वरवादी दर्शन समझकर उनके व्याख्यान किये हैं। उन दर्शनों के विषय में वेदानुयायी विद्वानों की भी अभी तक ऐसी ही धारणा है। चार्वाक, बौद्ध, जैन दर्शन ईश्वर के अस्तित्व को स्वतः स्वीकार नहीं करते। जैन-मतानुयायी हरिभद्र सूरि ने इसी आधार पर उन दर्शनों को अपने वर्ग में गिना है।

जिन मध्यकालिक व्याख्याकारों ने सांख्य आदि दर्शनों की निरीश्वरवादी व्याख्या की है, उन्होंने भी इस तथ्य को पूर्णरूप से स्वीकार किया है कि ये सभी दर्शन एक स्वर से वेद को निर्भान्त प्रमाण मानते हैं। इसलिए इन दर्शनों को 'वैदिक' दर्शन कहना अधिक उपयुक्त है। इनसे अतिरिक्त दर्शन अवैदिक हैं। यद्यपि महर्षि दयानन्द ने अपनी रचनाओं में इस वास्तविकता को भी बलपूर्वक प्रमाणित किया है कि सांख्य आदि दर्शन ईश्वर के अस्तित्व को पूर्णरूप से स्वीकार करते हैं।

दर्शनों के विभाग का यह आधार माने जाने पर वैदिक एवं अवैदिक दर्शनों के प्रतिपाद्य विषय, विचार-प्रणाली तथा तत्त्व-प्रतिपादन की पद्धति में परस्पर अनुकूलता न हो, यह स्वाभाविक है, पर वैदिक कहे जाने वाले दर्शनों में भी मुख्य विषयों तक में विरोध की संभावना की जाये तो यह अत्यन्त विचारणीय हो जाता है। प्रक्रिया के साधारण या छोटे-मोटे आभास्यमान विरोध की उपेक्षा की जा सकती है। यदि इतना भी न हो तो दर्शनों की छः संख्या ही निराधार हो जाय, सब कुछ समान होने पर तो दर्शन एक ही मान लिया जाय। पर जब मुख्य विषय का भेद सामने आता है तो समस्या खड़ी हो जाती है। यदि दर्शनशास्त्रों में परस्पर ऐसा भेद वास्तविक है और यह सब प्रतिपादन वेदमूलक है जो एक वैदिक दर्शन में होना चाहिये, तो यह भेद-सूत्र वेद तक जा पहुँचता है। यदि वहाँ पर भी दार्शनिक भित्ति के इतने भेद विद्यमान हैं तो वेद अमान्यता की कोटि में प्रवेश पा सकते हैं। सच्चाई सदा एक है। विरुद्धार्थक प्रतिपादक शास्त्र की मान्यता कैसे सम्भव हो सकती है? इन शास्त्रों के प्रवक्ताओं का साक्षात्कृतधर्मा तथा आप्त होना भी सन्देह में पड़ जाता है।

बौद्धदर्शन के अभ्युत्थान काल में वैदिक दर्शनों में पारस्परिक विरोधी भावनाओं को उभारने का विभिन्न प्रकारों से प्रयत्न किया गया, जो प्रचार की प्रबलता एवं कालिक अवसर पाकर बद्धमूल हो गया और अनन्तरवर्ती आचार्यों द्वारा उसी छाया में दर्शनों के व्याख्यान होते रहे। इन व्याख्याकारों ने उन विचारों को पर्याप्त हवा दी वह एक ऐसा रूप खड़ा हो गया, जिसके प्रतिकूल कुछ भी कहने का कोई आचार्य उस समय साहस नहीं कर सकता था। कुमारिल, शङ्कर, रामानुज सदृश मुनिकल्प प्रकाण्ड विद्वानों ने भी खुदी हुई पद्धति का ही अनुगमन किया। अब ऐसा प्रतीत होता है कि कदाचित् ये आचार्य उस क्रान्तदर्शिता के उच्चस्तर पर पहुँचने से वंचित रह गये, प्रशस्त पथ निर्माण की क्षमता के लिए जिसकी अपेक्षा रहती है। यद्यपि इन महान् आत्माओं ने अपने समय में वैदिक धर्म की सेवाओं के लिए अपना जीवन तक अर्पण कर अत्यन्त अभिनन्दनीय प्रयास किये।

पिछली अनेक शताब्दियों में सबसे पहला महामानव महर्षि दयानन्द हुआ है, जिसने दर्शनों की इस दिशा पर गम्भीरता से दृष्टिपात किया और घोषणा की कि वैदिक दर्शनों में तथाकथित पारस्परिक विरोध की उद्भावना करना नितान्त भ्रान्तिमूलक है। सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास में एक स्थल पर लेख है-

"(पूर्वपक्ष) सृष्टि विषय में... शास्त्रों का अविरोध है वा विरोध? (उत्तरपक्ष) अविरोध है। (पूर्वपक्ष) जो अविरोध है तो... मीमांसा में कर्म, वैशेषिक में काल, न्याय में परमाणु, योग में पुरुषार्थ, सांख्य में प्रकृति और वेदान्त में ब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति मानी है। अब किसको सच्चा और किसको झूठा मानें? (उत्तरपक्ष) इसमें सब सच्चे, कोई झूठा नहीं। झूठा वह है जो विपरीत समझता है। ...विरोध उसको कहते हैं कि एक कार्य में एक ही विषय पर विरुद्ध वाद होवे। छः शास्त्रों में अविरोध देखो इस प्रकार है। मीमांसा में ऐसा कोई भी कार्य जगत् में नहीं होता कि जिसके बनाने में कर्म चेष्टा न की जाये। वैशेषिक में समय न लगे बिना बने ही नहीं, न्याय में उपादान कारण न होने से कुछ भी नहीं बन सकता, योग में-विद्या, ज्ञान, विचार न किया जाये, तो नहीं बन सकता, सांख्य में-तत्त्वों का मेल न होने से नहीं बन सकता और वेदान्त में बनाने वाला न बनावे तो कोई भी पदार्थ उत्पन्न न हो सके। इसलिये सृष्टि छः कारणों से बनती है। उन छः कारणों की व्याख्या एक-एक की एक-एक शास्त्र में है। इसलिये उनमें विरोध कुछ भी नहीं।"

यह एक दिग्दर्शनमात्र है। इस लेख द्वारा महर्षि ने उस निर्बाध दिशा की ओर संकेत किया है। यदि इस सांकेतिक सुझाव के अनुसार गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाये तो दर्शनों में भ्रमपूर्ण भावनाओं से उद्भावित उस तथाकथित भेद की घाटी को आसानी से पार किया जा सकता है। कोई भी विचारशील विद्वान् यह अनायास समझ सकता है कि वैदिक दर्शनों की रचना परस्पर विरोधी अर्थों का प्रतिपादन करने के लिये नहीं हुई, प्रत्युत अपने मुख्य प्रतिपाद्य विषय का विशद विवरण प्रस्तुत करते हुए उस अंश में अन्य शास्त्रीय अर्थों की पूर्ति के लिये हुई है।

दर्शनों का उद्देश्य सृष्टि रचना की प्रक्रिया को पूर्णाङ्गरूप में प्रस्तुत करना है। ऋषि ने संकेतमात्र से उस पद्धति को सुझाया, जिसके अनुसार विवेचन करते हुए सृष्टि के उन आंशिक विवरणों को एक-एक दर्शन में स्पष्ट रूप से देख सकते हैं।

वैशेषिक में कणाद ने सृष्टि रचना के केवल उन तत्त्वों तक विवेचन प्रस्तुत किया है, जो मानव अथवा प्राणिमात्र के चारों और फैले स्थूल जगत् के सीधे सन्निहित उपादान तत्त्व हैं। यह आधिभौतिक जगत् का स्थूल विवेचन है। अन्य दर्शनों के प्रतिपाद्य विषय का निषेध नहीं।

सांख्य में कपिल ने उन उपादान तत्त्वों की अन्तिम सीमा तक विवेचना प्रस्तुत की है। कणाद अपने विवेचन को पृथिवी आदि के सूक्ष्म कण तक ले जाकर छोड़ देता है। वह इतना ही पाठ सिखाना चाहता है। आगे के पाठ का वह निषेध नहीं करता। कपिल के शिक्षाकेन्द्र में वह पाठ अन्तिम सीमा तक पूरा किया जाता है। जैसे पृथिवी आदि परमाणु से स्थूल पृथिवी उभरती है, वैसे ही वह परमाणु भी अपने मूल कारणों से परिणत होता हुआ पृथिवी-कण (परमाणु) के रूप में उभर आता है।

सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास से जो सन्दर्भ प्रथम उद्धृत किया गया है, उसी के आगे ऋषि ने एक संस्कृत- सन्दर्भ इस प्रकार लिखा है-

"नित्यायाः सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थायाः प्रकृतेरुत्पन्नानां परमसूक्ष्माणां पृथक् पृथग्वर्तमानानां तत्त्वपरमाणूनां प्रथमः संयोगारम्भः, संयोगविशेषादवस्थान्तरस्य स्थूलाकारप्राप्तिः सृष्टिरुच्यते।"

●●●

वेदों में पर्यावरण विज्ञान

(विश्व पर्यावरण दिवस ५ जून पर विशेष)

-स्वर्गीय डॉ रामनाथ वेदालंकार

वेद का सन्देश है कि मानव शुद्ध वायु में श्वास ले, शुद्ध जल को पान करे, शुद्ध अन्न का भोजन करे, शुद्ध मिट्टी में खेले-कूदे, शुद्ध भूमि में खेती करे। ऐसा होने पर ही उसे वेद-प्रतिपादित सौ वर्ष या सौ से भी अधिक वर्ष की आयु प्राप्त हो सकती है। परन्तु आज न केवल हमारे देश में, अपितु विदेशों में भी प्रदूषण इतना बढ़ गया है कि मनुष्य को न शुद्ध वायु सुलभ है, न शुद्ध जल सुलभ है, न शुद्ध अन्न सुलभ है, न शुद्ध मिट्टी और शुद्ध भूमि सुलभ है। कल-कारखानों से निकले अपद्रव्य, धुओं, गैस, कूड़ा-कचरा, वन-विनाश आदि इस प्रदूषण के कारण हैं। प्रदूषण इस स्थिति तक पहुंच गया है कि कई स्थानों पर तेजाबी वर्षा तक हो रही है। १८ जुलाई, १९८३ के दिन भारत के बम्बई शहर में तेजाबयुक्त वर्षा हो चुकी है। यदि प्रदूषण निरन्तर बढ़ता गया तो वह दिन दूर नहीं जब यह भूमि मानव तथा अन्य प्राणियों के निवासयोग्य नहीं रह जायेगी।

पर्यावरण-प्रदूषण की चिन्ताजनक स्थिति को देखकर ५ जून, १९७२ को बारह संयुक्त राष्ट्रों की एक बैठक इस विषय पर विचार करने के लिए स्टाकहोम (स्वीडन) में आयोजित हुई थी, जिसके फलस्वरूप विभिन्न राष्ट्रों द्वारा पर्यावरण-सुरक्षा हेतु प्रभावशाली कदम उठाए गए। उक्त गोष्ठी में भारत की तीसरी प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने भी 'पर्यावरण की बिगड़ती स्थिति एवं उसका विश्व के भविष्य पर प्रभाव' विषय पर भाषण दिया था। उसके पश्चात् भारत में पर्यावरण-प्रदूषण का अध्ययन करने, उसे रोकने के उपाय सुझाने एवं उनके क्रियान्वयन करने हेतु अनेक सरकारी तथा व्यक्तिगत या जनता की ओर से सामूहिक प्रयास होते रहे हैं तथा आज भी अनेक संस्थाएं इस दिशा में कार्यरत हैं। प्रस्तुत लेख में हम यह दर्शायेंगे कि वेद का पर्यावरण के सम्बन्ध में क्या विचार है!

१. वायु- स्वच्छ वायुमण्डल का महत्त्व

स्वच्छ वायु का सेवन ही प्राणियों के लिए हितकर है यह बात वेद के निम्न मन्त्रों से प्रकट होते हैं-

वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे।
प्र ण आयूंषि तारिषत्।। -ऋ० १०/१८६/१

वायु हमें ऐसा ओषध प्रदान करे, जो हमारे हृदय के लिए शांतिकर एवं आरोग्यकर हो, वायु हमारे आयु के दिनों को बढ़ाए।

यददो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः।
ततो नो देहि जीवसे।। -ऋ० १०/१८६/३

हे वायु! जो तेरे घर में अमृत की निधि रखी हुई है, उसमें से कुछ अंश हमें भी प्रदान कर, जिससे हम दीर्घजीवी हों।

यह वायु के अन्दर विद्यमान अमृत की निधि ओषजन या प्राणवायु है, जो हमें प्राण देती है तथा शारीरिक मलों को विनष्ट करती है। उक्त मन्त्रों से यह भी सूचित होता है कि प्रदूषित वायु में श्वास लेने से मनुष्य अल्पजीवी तथा स्वच्छ वायु में कार्बन-द्विओषिद की मात्रा कम तथा ओषजन की मात्रा अधिक होती है। उसमें श्वास लेने से हमें लाभ कैसे पहुंचता है, इसका वर्णन वेद के निम्नलिखित मन्त्रों में किया गया है-

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः।।
आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे।। -ऋ० १०/१३७/२,३ अथर्व० ४/१३/२,३

ये श्वास-निःश्वास रूप दो वायुएँ चलती हैं, एक बाहर से फेफड़ों के रक्त-समुद्र तक और दूसरी फेफड़ों से बाहर के वायुमंडल तक। इनमें से पहली, हे मनुष्य तुझे बल प्राप्त कराए और दूसरी रक्त में जो दोष है उसे अपने साथ बाहर ले जाये। हे शुद्ध वायु, तू अपने साथ ओषध को ला। हे वायु, शरीर में जो मल है उसे तू बाहर निकाल। तू सब रोगों की दवा है, तू देवों का दूत होकर विचरता है।

वनस्पतियों द्वारा वायु-शोधन-

कार्बन-द्विओषिद की मात्रा आवश्यकता से अधिक बढ़ने पर वायु प्रदूषित हो जाता है। वैज्ञानिक लोग बताते हैं कि प्राणी ओषजन ग्रहण करते हैं तथा कार्बन-द्विओषिद छोड़ते हैं, किन्तु वनस्पतियां कार्बन-द्विओषिद ग्रहण करती हैं तथा ओषजन छोड़ती हैं। वनस्पतियों द्वारा ओषजन छोड़ने की यह प्रक्रिया प्रायः दिन में ही होती है, रात्रि में वे भी ओषजन ग्रहण करती तथा कार्बन-द्विओषिद छोड़ती हैं। पर कुछ वनस्पतियां ऐसी भी हैं जो रात्रि में भी ओषजन ही छोड़ती हैं। कार्बन-द्विओषिद को चूसने के कारण वनस्पतियां वायु-शोधन का कार्य करती हैं। वायु-प्रदूषण से बचाव के लिए सबसे कारगर उपाय वनस्पति-आरोपण है। वेद भगवन् का सन्देश है ''वनस्पति वन आस्थापयध्वम् अर्थात् वन में वनस्पतियाँ उगाओ -ऋ० १०/१०१/११''। यदि वनस्पति को काटना भी पड़े तो ऐसे काटें कि उसमें सैकड़ों स्थानों पर फिर अंकुर फूट आएं। वेद का कथन है-

अयं हि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः
प्रणिनाय महते सौभगाय।
अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो विरोह,
सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम।।
-यजु० ५/४३

हे वनस्पति, इस तेज कुल्हाड़े ने महान सौभाग्य के लिए तुझे काटा है, तू शतांकुर होती हुई बढ़, तेरा उपयोग करके हम सहस्रांकुर होते हुए वृद्धि को प्राप्त करें।

अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा
विरोहतात। -यजु० १२/१००

हे ओषधि, तू दीर्घायु होती हुई शत अंकुरों से बढ़।

वेद सूचित करता है कि सूर्य और भूमि से वनस्पतियां में मधु उत्पन्न होता है, जिससे वे हमारे लिए लाभदायक होती हैं-

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः।। -यजु० १३/२९

वनस्पति हमारे लिए मधुमान हो, सूर्य हमारे लिए मधुमान् हो, भूमियाँ हमारे लिए मधुमती हों।

फूलों-फलों से लदी हुई ओषधियां नित्य भूमि पर लहलहाती रहें, ऐसा वर्णन भी वेद में मिलता है- ''ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः -ऋ० १०/९७/३''। वेद यह भी कहता है ''मधु मन्मूलं मधुमदग्रमासां मधुमन्मध्यं वीरुधां बभूव। मधुमत्पर्ण मधुमत्पुष्पमासां अर्थात् ओषधियों का मूल, मध्य, अग्र, पत्ते, फूल सभी कुछ मधुमय हों -अथर्व० ८/७/१२''।

वेद मनुष्य को प्रेरित करता है ''मापो मौषधीर्हिंसीः अर्थात् तू जलों की हिंसा मत कर, ओषधियों की हिंसा मत कर -यजु० ६/२२''। जलों की हिंसा से अभिप्राय है उन्हें प्रदूषित करना तथा ओषधियों की हिंसा का तात्पर्य है उन्हें विनष्ट करना।

अथर्ववेद के एक मन्त्र में ओषधियों के पांच वर्ग बताए गए हैं तथा यह भी कहा गया है कि ये हमें प्रदूषण (अहंस्) से छुड़ाए-

पंच राज्यानि वीरूधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः।
दर्भो भङ्गो यवः सहस्ते नो मुंचन्त्वंहसः।।
-अथर्व० ११/६/१५

'सोम, दर्भ, भंग, यव, सहस्' आदि ओषधियों का ज्ञानपूर्वक प्रयोग करते हुए हम रोगों का समूल विनाश करते हैं।

वेद में घरों के समीप कमल-पुष्पों से अलंकृत छोटे-छोटे सरोवर बनाने का विधान मिलता है- उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः -अथर्व ४/३४/५,-७। फव्वारों का विधान इस हेतु किया गया प्रतीत होता है कि ऊपर उठती तथा चतुर्दिक् फैलती जल-धाराओं पर जब सूर्य-किरणें पड़ती हैं, तब उनमें प्रदूषण को हरने की विशेष शक्ति आ जाती है।

अथर्ववेद के भूमिसूक्त में भूमि को कहा गया है, ''अरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु अर्थात् तेरे जंगल हमारे लिए सुखदाई हों। -अथर्व० १२/१/११,१७''।

२. शुद्ध जलों का महत्त्व

वेद का कथन है ''अप्स्वन्तरमृतम् अप्सु भेषजम् अर्थात् शुद्ध जलों के अन्दर अमृत होता है, ओषध का निवास रहता है -ऋ० १/२३/१९''। ''आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि अर्थात् शुद्ध जल के सेवन से मनुष्य रसवान् हो जाता है -ऋ० १/२३/२३''। ''उर्ज वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् अर्थात् शुद्ध जलों में ऊर्जा, अमृत, तेज एवं पोषक रस का निवास होता है -यजु० २/३४''। ''शुद्ध जल पान किये जाने पर पेट के अंदर पहुंचकर पाचन-क्रिया को तीव्र करते हैं। वे दिव्यगुणयुक्त, अमृतमय, स्वादिष्ट जल रोग न लानेवाले, रोगों को दूर करनेवाले, शरीर के प्रदूषण को दूर करनेवाले तथा जीवन-यज्ञ को बढ़ानेवाले होते हैं -यजु० ४/१२''।

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे।। -ऋ० १०/९/१

शुद्ध जल आरोग्यदायक होते हैं, शरीर में ऊर्जा उत्पन्न करते हैं, वृद्धि प्रदान करते हैं, कण्ठस्वर को ठीक करते हैं तथा –ष्टि-शक्ति बढ़ाते हैं।

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभि स्त्रवन्तु नः।। -ऋ० १०/९/४

शुद्ध जलों का पान करके एवं उन्हें अपने चारों ओर बहाकर अर्थात् उनमें डुबकी लगाकर या कटि-स्नान करके हम अपना स्वास्थ्यरूप अभीष्ट प्राप्त कर सकते हैं।

जलों के प्रकार-

वेदों में जल कई प्रकार के वर्णित किये गए हैं और उनके सम्बन्ध में यह कहा गया है कि वे सबके लिए प्रदूषणशामक एवं रोगशामक हों:

शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः।
शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः।।
शं त आपो धन्वन्याः शं ते सन्त्वनूप्याः।
शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिरा भृताः।। -अथर्व० १९/२/१-२

इन मन्त्रों में जलों के निम्नलिखित प्रकारों का उल्लेख हुआ है:

१. हिमालय के जल (हेमवतीः आपः)- ये हिमालय पर बर्फ-रूप में रहते हैं अथवा चट्टानों के बीच में बने कुंडों में भरे रहते हैं, अथवा पहाड़ी झरनों के रूप में झरते रहते हैं।

२. स्त्रोतों के जल (उत्स्याः आपः)- ये पहाड़ी या मैदानी भूमि को फोड़कर चश्मों के रूप में निकलते हैं। कई चश्मों में गन्धक होता है, गन्धक का एक चश्म देहरादून के समीप सहस्रधारा में है।

३. सदा बहते रहनेवाले जल (सनिष्यदाः आपः)- ये सदा बहते रहने के कारण अधिक प्रदूषित नहीं हो पाते हैं।

४. वर्षाजल (वर्ष्याः आपः)- वर्षा से मिलनेवाले जल शुद्धि तथा ओषधि-वनस्पतियों एवं प्राणियों को जीवन देनेवाले होते हैं। अथर्ववेद के प्राण-सूक्त (११/४/५) में कहा है कि जब वर्षा के द्वारा प्राण पृथिवी पर बरसता है तब सब प्राणी प्रमुदित होने लगते हैं।

५. मरुस्थलों के जल (धन्वन्याः आपः)- मरुस्थलों की रेती में अभ्रक, लोहा आदि पाए जाते हैं, उनके सम्पर्क से वहां के जलों में भी ये पदार्थ विद्यमान होते हैं।

६. आर्द्र प्रदेशों के जल (अनूप्याः आपः)- जहां जल की बहुतायत होती है वे प्रदेश अनूप कहलाते हैं, तथा उन प्रदेशों में होनेवाले जल अनूप्य। यहां के जल मि-दूषित भी हो सकते हैं।

७. भूमि खोदकर प्राप्त किये जल (खनित्रिमाः आपः)- कुएं, हाथ के नलों आदि के जल इस कोटि में आते हैं।

८. घड़ों में रखे जल (कुम्भेभिः आभृताः आपः)- घड़े विभिन्न प्रकार की मिट्टी के तथा सोना, चांदी, तांबा आदि धातुओं के भी हो सकते हैं।

जल-शोधन-

जलों को प्रदूषित न होने देने तथा प्रदूषित जलों को शुद्ध करने के कुछ उपायों का संकेत भी वेदों में मिलता है।

यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वेदेवा यासूर्जं मदन्ति।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु।। -ऋ० ७/४९/४

वे दिव्य जल हमारे लिए सुखदायक हों, जिनमें वरुण, सोम, विश्वेदेवाः तथा वैश्वानर अग्नि प्रविष्ट हैं।

यहां वरुण शुद्ध वायु या कोई जलशोधक गैस है, सोम चन्द्रमा या सोमलता है, विश्वेदेवाः सूर्यकिरणें हैं तथा वैश्वानर अग्नि सामान्य आग या विद्युत् है।

ऋग्वेद में लिखा है ''यन्नदीषु यदोषधीभ्यः परि जायते विषम। विश्वेदेवा निरितस्तत्सुवन्तु अर्थात् यदि नदियों में विष उत्पन्न हो गया है तो सब विद्वान् जन मिलकर उसे दूर कर लें -ऋ० ७/५०/३''।

३. भूमि

भूमि को वेद में माता कहा गया है ''माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः -अथर्व० १२/१/१२'', ''उपहूता पृथिवी माता -यजु० २/१०''। वेद कहता है-

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा।। -अथर्व० १२/१/९

जिस भूमि की सेवा करनेवाली नदियां दिन-रात समान रूप से बिना प्रमाद के बहती रहती हैं वह भूरिधारा भूमिरुप गौ माता हमें अपना जलधार-रूप दूध सदा देती रहें।

भूमि की हिंसा न करें-

वेद मनुष्य को प्रेरित करते हुए कहता है ''पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृह, पृथिवीं मा हिंसीः अर्थात् तू उत्कृष्ट खाद आदि के द्वारा भूमि को पोषक तत्त्व प्रदान कर, भूमि को दृढ़ कर, भूमि की हिंसा मत कर''। भूमि की हिंसा करने का अभिप्राय है उसके पोषक तत्वों को लगातार फसलों द्वारा इतना अधिक खींच लेना कि फिर वह उपजाऊ न रहे। भूमि पोषकतत्त्वविहीन न हो जाये एतदर्थ एक ही भूमि में बार-बार एक ही फसल को न लगाकर विभिन्न फसलों को अदल-बदलकर लगाना, उचित विधि से पुष्टिकर खाद देना आदि उपाय हैं। आजकल कई रासायनिक खाद ऐसे चल पड़े हैं, जो भूमि की उपजाऊ-शक्ति को चूस लेते हैं या भूमि की मिट्टी को दूषित कर देते हैं।

भूमि में या भूतल की मिट्टी में यदि कोई कमी आ जाये तो उस कमी को पूर्ण किये जाने की ओर भी वेद ने ध्यान दिलाया है ''यत्त ऊनं तत्त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य अर्थात् प्रजापति राजा विभिन्न उपायों द्वारा उस कमी को पूरा करे -अथर्व०

क्रमशः.....८ पर

पृष्ठ.....३ का शेष

Samajists Shuddhi offered the basis for innovation which would in time, transform Hinduism into a conversion religion equal institutionally to its competitors the prophetic faiths of Islam, Sikhism and Christianity" अर्थात् आर्य समाजियों के लिए शुद्धि एक ऐसी नवीनता का आधार बन गया जिसके द्वारा कालान्तर में हिन्दू धर्म भी एक ऐसा धर्मान्तरण स्वीकार करने वाला धर्म बन जाए जैसे उसके प्रतिस्पर्धी अन्य इस्लाम, सिख तथा साई धर्म हैं।

शुद्धि आन्दोलन की असफलता :

यह स्पष्ट है कि हिन्दू धर्म ने अपनी विवशता को अपनी विशेषता मानकर ही धर्मान्तरण के मार्ग को नहीं अपनाया। हिन्दू धर्म की सर्वविदित धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों के परिणामस्वरूप दार्शनिक और तात्विक दृष्टि से उसकी तुलना में निर्बल धर्मों के अनुयायी भी हिन्दू धर्म में दीक्षित नहीं होते और जो होते हैं, उन्हें हिन्दू धर्म अपने में आत्मसात नहीं कर पाता। यहाँ तक कि मुस्लिम तथा अंग्रेजी शासन में जो हिन्दू जोर-जबरदस्ती या लोभ लालच के कारण अहिन्दू बन गए थे उन्हें भी हिन्दू अपनी जाति-पाँति की कुप्रथा के कारण अहिन्दू बन गए थे उन्हें भी हिन्दू अपनी जाति पाँति की कुप्रथा के कारण वापिस नहीं ले सके । आर्य समाज ने भी यह बहुत बड़ी भूल की कि उसने शुद्धि जैसे अपने प्रचार के दूरगामी साधन का उपयोग ईसाई और मुसलमानों को आर्य समाज के दूरगामी साधन का उपयोग ईसाई और मुसलमानों को आर्य समाज के वैदिक धर्म में दीक्षित करने के स्थान में उन्हें हिन्दू बनाकर छोड़ दिया। इसी का परिणाम हैं कि अनेक जन्मजात मुसलमान और ईसाई जो आर्य समाज के माध्यम से शुद्ध किए गए वह भी हिन्दुओं की जाति-पाँति और इसके परिणामस्वरूप होने वाली विवाह आदि सामाजिक समस्याओं के कारण वापिस चले गए और इस प्रकार वह न आर्य बने और न ही हिन्दू। इसका मुख्य कारण भी यही था कि आर्यों का अपना कोई स्वतंत्र और हिन्दुओं से पृथक् सामाजिक अस्तित्व नहीं वन पाया।

प्रचारक धर्म के लिए यह आवश्यक है कि उसका धार्मिक और सामाजिक संगठन ऐसा हो जिसके कारण अन्य धर्मों के लोग उसके प्रति आकर्षित हो सके और उसमें उनकी उन सब धार्मिक और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके, जिसका हिन्दू धर्म में अभाव है। इस दृष्टि से अपने ऊँचे दार्शनिक विचारों के वावजूद भी हिन्दू धर्म सबसे कमजोर और आकर्षण रहित धर्म है। यही कारण है कि आज शायद ही किसी बाहरी देश में वहाँ के मूल निवासियों ने हिन्दू धर्म को स्वीकार किया हो। इसके विपरीत अफ्रीका जैसे जंगली और पिछड़े समझे जाने वाले विशाल देश के निवासी मुसलमान हैं या ईसाई ।

आर्य समाज का प्रचार कार्य :

आर्य समाज अपने जिस धार्मिक और सामाजिक प्रचार कार्य के लिए प्रसिद्ध था, वह गत अनेक वर्षों से या तो सर्वथा निस्तेज हो गया है या बन्द हो गया है।

इसके कई कारण है। पहला तो यही कि शनैः शनै उसके हिन्दुकरण के परिणामस्वरूप उसके प्रचारकों और नेतृत्व में अब इसके प्रति अपेक्षित उत्साह नहीं रहा, यहां तक कि कुछ व्यक्ति अब उसकी आवश्यकता तक अनुभव नहीं करते।

प्रचार के साधन अप्रभावी :

दूसरा कारण यह है कि अपने प्रारम्भिक और उत्कर्ष काल में उसके जो प्रचार के साधन और तरीके थे, वे अब पुराने और अप्रभावी हो गए हैं और उनमें परिस्थितियों और आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तन नहीं किया जा रहा है।

धर्म निरपेक्षता का विकृत अर्थः

स्वाधीनता आन्दोलन काल में राजनैतिक विवशता के कारण महात्मा गाँधी द्वारा प्रतिपादित हिन्दू मुस्लिम एकता की आवश्यकता को ध्यान में रखकर अहिन्दू धर्मों और विशेषकर इस्लाम के सम्बन्ध में हमने अपनी मनचाही धारणाएँ और मान्यताएँ गढ़ना शुरू कर दी, जिन्हें न ईसाई और न ही मुसलमान धर्म के अधिक प्रवक्ताओं ने कभी स्वीकार किया। उदाहरण के लिए विनोबा भावे ने कुरान का शान्ति और अहिंसा आदि का प्रतिपादन करने के लिए जो भाष्य किया उसका इतना विरोध हुआ कि उसको मुसलमानों द्वारा वहिष्कृत कर दिया गया।

खिलाफत :

मैं यह वात केवल इस तथ्य को उजागर करने के लिए कह रहा हूँ कि स्वाधीनता आन्दोलन की इस धरोहर (लीगेसी Legacy) के परिणामस्वरूप स्वाधीन भारत के संविधान में हमने जिन आधारभूत सिद्धान्तों को स्वीकार किया उनमें धर्म निरपेक्षता प्रमुख है किन्तु वह वास्तविक अर्थों में धर्म निरपेक्ष राज्य के स्थान में सर्वधर्म सापेक्ष राज्य के रूप में विकसित होने लगी। धर्म निरपेक्षता एक आधुनिक और पाश्चात्य विचारधारा हैं जो अनेक ऐतिहासिक कारणों के परिणामस्वरूप यूरोपीय देशों में प्रचलित हुई, जिसका वास्तविक अर्थ यह था कि राज्य का कोई अपना सरकारी धर्म नहीं है और न ही धर्म के आधार पर उसके नागरिकों के अधिकार और कर्तृतव्य निर्धारित किए जाने चाहिए । इसके विपरीत हमने सब धर्मों की समानता या उनके प्रति आदर की अपनी धर्म निरपेक्षता की विचित्र विचारधारा के आधार पर राज्य की ओर से प्रायः सब धर्मों और विशेषकर संगठित इस्लाम और ईसाई आदि धर्मों को भी राज्य का संरक्षण और प्रोत्साहन देना प्रारम्भ कर दिया। और धर्म निरपेक्ष के स्थान में सर्वधर्म सापेक्ष राज्य बना दिया।

धर्म के नाम पर अन्धविश्वास :

इतना ही नहीं केवल धार्मिक आधार पर संविधान की धारा ३० जैसे विशेष मौलिक अधिकार भी संविधान में सम्मिलित कर दिए। इन सब का परिणाम यह हुआ कि धर्म के नाम पर जो अन्धविश्वास और कुरीतियाँ प्रचलित थी उनका निराकरण तो दूर समीक्षा तक करना असंवैधानिक और गैर कानूनी समझा जाने लगा।

धार्मिक विचार विनिमयः

आर्य समाज की तत्कालीन प्रचार शैली पर इस विचारधारा का अत्यन्त प्रतिकूल या दूरगामी परिणाम हुआ। दूसरे शब्दों में उसके द्वारा धार्मिक विषयों पर किए जाने वाले विचार विनिमय तथा शास्त्रार्थ आदि प्रचार के माध्यम आपत्तिजनक समझे जाने लगे। आर्य समाज के प्रारम्भिक युग में और देश की उस समय की परिस्थिति में न केवल धर्म प्रचार के लिए अपितु धार्मिक दृष्टि से असहाय और असुरक्षित हिन्दुओं की रक्षा के लिए भी प्रायः सर्व प्रचारक धर्मों में प्रचलित इन साधनों का औचित्य और महत्व रहा है किन्तु में यहाँ इस प्रचार शैली का एतिहासिक औचित्य स्वीकार करते हुए भी वर्तमान स्थिति में उस पर पुनः विचार करने की आवश्यकता को अस्वीकार नहीं करना चाहता। इसलिए आर्य समाज को भी अपनी पुरानी प्रचार शैली में आवश्यक सुधार करके यथासम्भव उसका आधार मण्डनात्मक करने पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए। ईसाई मुसलमान आदि अनेक प्रचारक धर्मों ने भी अब इस आवश्यकता को स्वीकार करके अपने धर्म प्रचार जिन नवीन साधनों को स्वीकार किया है आर्य समाज को भी उनका अनुकरण करना चाहिए।

सामूहिक स्थान में व्यक्तिगत प्रचार :

शास्त्रार्थ आदि के अतिरिक्त आर्य समाज के प्रारम्भिक काल में उसके प्रचार के अन्य साधनों में उत्सव, नगर कीर्तन आदि जैसे सामूहिक साधन भी थे, जिनमें विद्वान् वक्ताओं के अतिरिक्त भजनोपदेशकों और भजन मण्डलियों का भी विशेष स्थान था। किन्तु गत अनेक वर्षों के अनुभव से यह स्पष्ट है कि अब आर्य समाज के उत्सवों, नगर कीर्तनों तथा भजनोपदेशों में वह आकर्षण नहीं रहा जो पहले था। अजमेर तथा लाहौर जैसे विशाल उत्सवों और नगर कीर्तिनों के लिए प्रसिद्ध समाजों ने भी अपने उत्सव और कीर्तन अब बन्द नहीं तो स्थगित से कर दिए हैं।

सेवा और साहित्य :

धर्मान्तरण के सम्बन्ध में जहाँ हिन्दुओं के दृष्टिकोण के अनुसार उसकी कोई आवश्यकता या औचित्य नहीं है वहीं वहाँ धर्मान्तरण को अपना मुख्य लक्ष्य मानने वाले ईसाई और इस्लाम धर्म के प्रचारक भी अब इस आधुनिक दृष्टिकोण के औचित्य को स्वीकार करने लगे हैं कि किसी व्यक्ति को उसके जन्मजात धर्म को बदलने के लिए जोर जबर्दस्ती जैसे उन पुराने साधनों का वर्तमान परिस्थिति में उपयोग करना उपयुक्त नहीं है जिनका अपने जीवन के प्रारम्भिक और मध्यकाल में वह उपयोग करते थे। उदाहरणार्थ अब इस्लाम का परम्परागत तलवार के जोर पर धर्मान्तरण करना कानूनी अपराध है। इसी प्रकार लोभ लालच या अनुचित प्रलोभन भी कई देशों में अनैतिक ही नहीं, गैर-कानूनी हैं। इतना ही नहीं विज्ञान, राजनीति तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों में जहाँ अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता है वहीं अब धार्मिक विश्वासों और मान्यताओं के क्षेत्र में इस प्रकार के विचार स्वतन्त्रता पर अनेक प्रतिबन्ध लगे हैं। उदाहरण के लिए किसी पैगम्बर, मसीहा और धर्म संस्थापक के व्यक्तिगत जीवन की आलोचना सही होने पर भी इस आधार पर निषिद्ध समझी जाती है कि उसके कारण उनके अनुयायियों की भावनाओं को आघात पहुँचता है।

प्रचार के नवीन साधन :

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में अब धर्म प्रचार के लिए भी प्रायः उन सब नवीन प्रचार साधनों का उपयोग किया जाता है जिनका अन्य क्षेत्रों में उपयोग होने लगा है। उदाहरण के लिए लेख, पुस्तकें और समाचार पत्रों के अतिरिक्त रेडियों, टी.वी. तथा फिल्में भी प्रचार के शक्तिशाली आधुनिक यन्त्र हैं। दुर्भाग्य से आर्य समाज के नेतृत्व ने धर्म प्रचार के इन नवीन साधनों का लाभ उठाने के लिए कारगर ढंग से अभी तक कोई प्रयत्न नहीं किया। विदेशों में तो टी.वी. तथा रेडियो पर नियमित रूप से इस्लाम और ईसाई धर्मो के प्रचार के लिए समय तथा चैनल निश्चित है। भारत में भी ईसाई धर्म प्रचारक इसका उपयोग करते हैं, सिक्खों की गुरुवाणी का भी रेडियो और दूरदर्शन पर प्रसारण किया जाता है। किन्तु आर्य समाज ने इन दोनों प्रभावशाली साधनों का उपयोग करने का अभी तक प्रयल नहीं किया ।

(नोट : लाला लाजपतराय ने आर्य समाज के हिन्दूकरण पर १९२० के आसपास ही चेतावनि दी थी। वह आज भी बहुत ही समीचीन है।)

साभार-आर्य जीवन
फरवरी, २०२२

बच्चों को गिनती इस तरह याद कराएं जिससे आध्यात्मिक बोध भी वे पाएं।।

१.सबका मालिक एक, सारे जग की टेक।
२.चेतन सखा हैं दो, पुरुष कहलाते वो।
३.जीव, प्रकृति, प्रभु तीन, त्रैतवाद जग कीन्ह।
४.कुल वर्ण होते हैं चार, (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र) योग्यता विशेष विचार।
५.प्राण होते हैं पांच, (प्राण अपान व्यान समान उदान)बनकर पिंड रहे हैं नाच।
६.ऋतुएं होती छह, (सर्दी गर्मी वर्षा शरद शिशिर हेमंत) परिवर्तन ले सह।
७.धातु होती सात (रस रक्त मांस मेद अस्थि मज्जा शुक्र) पिंड उन्हीं का संहात।
८.चक्र होते हैं आठ, संयम से कर ठाठ। (मूलाधार चक्र- यह गुदामूल में है।
स्वधिष्ठान चक्र- मूलाधार से कुछ ऊपर है।
मणिपूरक चक्र- इसका स्थान नाभि है।
हृदय चक्र - हृदय में है।
अनागत चक्र- हृदय स्थान से थोड़ा ऊपर है।
विशुद्धि चक्र- इसका स्थान कण्ठमूल है।
आज्ञा चक्र- यह दोनों भ्रुवों के मध्य में है।
सहस्रार चक्र- मस्तिष्क में है।)
९.तन के नौ हैं द्वार (२ चक्षु २ श्रोत्र २ नासिका १ मुख २ मल मूत्र द्वार)
आत्मा के अधिकार।
१०.दिशाएं होतीं दश, (पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण ईशान वायव्य नैऋत्य आग्नेय ध्रुवा ऊर्ध्वा)
विमल हो पी प्रभु रस।।

-आचार्या विमलेश बंसल ''आर्या''
विमल वैदेही (दर्शनाचार्य)

विशेष - और अष्टांग योग को भी आठ की गिनती में ले सकते है।

पृष्ठ १ का शेष.....

दो मन्त्रों के विषय में चर्चा की गई थी। इन सभी वस्तुओं का जिसका रचयिता परमपिता परमात्मा है। उस की महिमा का वर्णन हर वस्तु में दृश्यमान होता है तो हमें प्रेरणा लेनी है। स्वार्थी एवं आत्मकेन्द्रित जीवन तो पशु भी जीते हैं, फिर मनुष्य जीवन किस लिए? ''ते मृत्यलोकं भूविभारभूताः मनुस्मरूपेण मृगाश्चरन्ति ''(भृर्तहरि) इसलिए जब मानव परमात्मा का व्यापक रूप समझ जाता है तो उसे चित्त को शुद्ध शान्त एवं स्थिर कर उपासना के लिए तैयार होना है। उस स्थिति के लिए स्वामी जी ने उन मन्त्रों का विनियोग किया जिससे मानव को ज्ञान हो सके कि वही जगत में चेतन एवं स्थावर पदार्थों में व्याप्त हो रहा है। केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम् । तीसरे मन्त्र में इसलिए आया है ''सूर्य आत्मा जगत स्तस्थुषश्च। उसकी सत्ता का जगह जगह बोध। परमात्मा दिव्य शक्तियों का (चित्रम्) आश्चर्य है। इसी आश्चर्य के विषय में उपनिषद् का वचन है।

आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽ श्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः कठोपनिषद् २/७

अर्थात इस ब्रह्म का कहने वाला कोई आश्चर्यवान ही है। इस ब्रह्म को प्राप्त करने वाला भी अति प्रवीण ही है। इस ब्रह्म को समझने वाला भी कोई निपुण ब्रह्मज्ञानी से सिखाया हुआ आश्चर्यवान ही है।

वह स्थावर जगंम के पीछे एक ही सततगामी सबका सूर्य परमात्मा, द्यावा पृथिवी अन्तरिक्ष में ओतप्रोत है)

देवानां अनीकम् - दिव्यगण स्वभाव वाले विद्वानों का परम उत्तम बल है। उत्तम आश्रय है।

उत्अगात् (उद्गादत्) वह अच्छी प्रकार हमारी आत्मा में प्रकाशित होवे।

मित्र - जो कष्टों, आपत्ति आदि में रक्षा करता है। जो स्नेह से स्निग्ध रखता है।

वरुण- जो उत्तम आचरण के द्वारा वरणीय, प्रशंसनीय है। जो धर्माचरण करने वाला का पति है, प्रमुख है, उसे वरूण करते हैं। वरुण धर्मणां पति (तै ब्राह्मण ३/११/४/१)

अग्नि- अग्नि अन्धकार और अपवित्रता का नाशक है। ज्ञान प्रकाश एवं पवित्रता प्रदान करने वाला है।

चक्षु- जिस प्रकार नेत्र प्राणियों को मार्ग दर्शन करवाता है, उसी प्रकार परमात्मा सबका मार्ग दर्शक है।

आत्मा- आत्मा जैसे शरीर का सन्चालक है वैसी ही परमात्मा जड़-चेतन जगत का संचालक है। आत्मनो अरि दर्शनेन, श्रवणेन, मत्या विज्ञानेन इदं सर्व विदितम्- (शतपथ १४,५,४,५) दर्शन को, सुनने से सब विज्ञान को पूर्ण रूपेण आत्मा के द्वारा ही जाना जाता है।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षँ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा।।

यजु०७/४२

अर्थ - वह परमात्मा, पूज्य कामना करने योग्य, अद्भुत विलक्षण स्वरूप एवं शक्ति से युक्त है। दिव्यगुण स्वभाव वाले विद्वानों का परम उत्तम बल है। आश्रय है। विद्वजन उसी से बल प्राप्त करते है। बह अच्छी प्रकार हमारी आत्मा में प्रकाशित होवे। वह मित्र- रागद्वेषरहित, मित्रभावना वाले मनुस्य का, श्रेष्ठ आचरण के कारण जो वरणीयः, प्रशंसनीय अथवा जो चाहने के योग्य है। ऐसे उपासक, की उत्तम ज्ञान वाले उपासक का मार्ग दर्शक है। वह द्युलोक, पृथिवीलोक, आकाश आदि लोक - लोकान्तरों को रचकर, उनमें व्यापत होकर धारण कर रहा है। वह (सूर्य) सकल जगत का उत्पादक एवं प्रकाशक है। चेतन एवं स्थावर जगत की आत्मा है। उन सभी में व्यापत होकर संचालन करने वाला है) स्वाहा - मैं सत्य मधुर, कोमल वाणी एवं हृदय से उस प्रभु का स्मरण व गुणगान करता हूँ।

स्वाहा शब्द का अर्थ है- ''स्वाहा इत्येतत् सु आहेति स्वा वाग् आहेति वा स्वं प्रति वा स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा'' निरूक्त ८/२०

जिस क्रिया के द्वारा सुन्दर मधुर व कल्याणकर शब्द बोले जाते हैं, अपनी वाणी के द्वारा वहीं वचन बोलना जो हृदय में है। अपने ही पदार्थ को अपना कहना, दूसरों के पदार्थ में लोभ न करना। सुसंस्कृत हवि प्रदान करने की क्रिया को 'स्वाहा' कहते हैं।

अन्तिम मन्त्र -

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरतापश्येम शरदः शतं
जीवेयू शरदः शतं श्रुणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः
शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।। यजु. ३६/२४

देवहितम् - जो देवों के लिए हितकारी है। देव दिव्यगुण-कर्म-स्वभाव वाले विद्वानों, श्रेष्ठ व्यक्तियों का जो सदा हित करता है।

शुक्रम् - शुच् धातु से यह शब्द सिद्ध होता है। अर्थात पवित्र एवं पवितकर्ता, शुद्ध, उज्ज्वल ज्ञातस्वरूप आदि। यह ईश्वर का विशेषण है।

अर्थ- वह मेरा उपास्य, सबका मार्ग दर्शक और सबका द्रष्टा दिव्यगुण कर्म-स्वभाव वाले विद्वानों का हितकारी है। शुद्ध एवं ज्ञानस्वरूप, पवित्र एवं पवित्रकर्ता है) (पुरस्तात् उच्चरत्) सम्मुख उपस्थित हुआ है अर्थात आत्मा में उसका अनुभव हुआ है। उसको हम सौ वर्ष पर्यन्त ज्ञान चक्षु से देखें, उसको देखते हुए सौ वर्ष तक जीएँ, उसको सौ वर्ष तक सुने, सौ वर्ष तक उसका प्रवचन करें। उसकी उपासना से हम सौ वर्ष तक अदीन अर्थात स्वतन्त्र, स्वाभिमानी और समृद्ध बने रहें और सौ वर्ष से भी अधिक तक हम उसे देखें, जीएँ, सुने, प्रवचन करें और स्वतन्त्र रहें।

बहुत से लोग इसका अर्थ करते हैं कि हम सौ वर्ष तक जीएँ, सुनें आदि। यह युक्तिसंगत नहीं। परमेश्वर की उपासना- पूर्वक सौ वर्ष जीने, सुनने आदि में सौ वर्ष की आयु की प्रार्थना स्वतः है व्यक्त हो जाती है।

उपस्थान प्रकरण के अन्त में 'कृतांजलिरत्यन्त श्रद्धालु-
र्भूत्वतैर्मन्त्राः स्तुवन् सर्वकाल सिद्धयर्थ परमेश्वर प्रार्थयेत्।।
(पंचमहायज्ञविधि-ब्रह्मयत प्रकरण)

अर्थात इस लिए प्रेम में अत्यन्त मग्न हो कर अपने आत्मा और मन को परमेश्वर में जोड़ के इन मन्त्रों से स्तुति और प्रार्थना सदा करते रहें। यहाँ अपने आत्मा और मन को परमेश्वर में जोड़ना कृतांजलि है।

अन्ततः स्वामी जी का उपस्थान मन्त्रों का विनियोग का उद्देश्य यही है कि जब हमें मनसा परिक्रमा मन्त्रो द्वारा परमात्मा की व्यापक रूप समझ आ जाता है तो उसे चित्त को शुद्ध शान्त एवं स्थिर कर उपासना के लिए तैयार होना है। इन मन्त्रों से उसे ज्ञान हो सके कि वही जगत में चेतन एवं स्थावर पदार्थो में व्याप्त हो रहा है - 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'। वही ''केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम्'' हमारी आत्मा में प्रकाशित हो रहा है।

इसके पश्चात गायत्री अनुष्ठान करते हुए समर्पित भाव से प्रार्थना है कि वह परमपिता परमात्मा हमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि शीघ्रता से हमें प्राप्त कराये।

मो.७००६८२२७२०

सभा प्रधान जी के श्वसुर पंचतत्व में विलीन

आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा जी के श्वसुर जी चौधरी विजयपाल सिंह जी का लगभग ८२ वर्ष की आयु में आकस्मिक निधन निज निवास दिल्ली में दिनांक ०३ जून, २०२४ को हो गया जो सेवानिवृत्त इंजीनियर थे।

आर्य प्रतिनिधि सभा के समस्त पदाधिकारीगण अपनी शोक संवेदनायें व्यक्त करते हुए दिवंगत आत्मा के मोक्ष हेतु एवं परिवार के सभी सदस्यों व हितैषियों को यह असहनीय दुःख सहने करने की शक्ति देने की परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।

आर्यमित्र परिवार अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

शोक समाचार

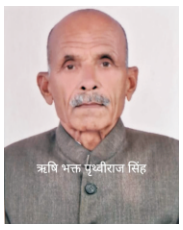

आर्य समाज यमला अर्जुनपुर, जनपद बहराइच के पूर्व प्रधान व कोषाध्यक्ष श्री पृथ्वीराज सिंह का लगभग ८५ वर्ष की आयु में गुरूकुल धनपतगंज, सुल्तानपुर के कार्यक्रम से वापस जाते समय गोण्डा में दिनांक ३१ मई, २०२४ को आकस्मिक निधन हो गया।

प्राध्यापक पद से सनू २००६ में सेवानिवृत्ति के पश्चात् स्व. पृथ्वी सिंह महर्षि देव दयानन्द जी के वैदिक ध्वज वाहक के रूप में देश व प्रदेश के आयोजनों में सदैव उपस्थित रहे। विद्वानों व सन्यासियों आदि से उनकी आत्मीयता, लगाव व सम्मानभाव हमेशा बना रहता। स्व. पृथ्वी सिंह जी संतवत्, सहज सरल व विनम्रता आदि की प्रतिमूर्ति थे। अपने पीछे वह भरापूरा परिवार छोड़ गये हैं। ईश्वर के विधान को बदलना सम्भव नहीं, उसके नियम अटूट व अटल हैं।

स्व. पृथ्वी सिंह का अन्तिम संस्कार दिनांक १ जून, २०२४ को उनके पैतृक निवास ग्राम हसनपुर मुलई, कैसरगंज, जनपद-बहराइच में आचार्य शिवदत्त पाण्डेय, अमित आर्य, स्वामी कृष्णानंद व परिजनों आदि के सानिध्य में सम्पन्न हुआ। दिनांक ०३ जून, २०२४ को शांति यज्ञ आचार्य विश्वव्रत शास्त्री के ब्रह्मत्व में उनके पैतृक निवास पर हुआ। जिसमें आर्य जगत के विद्वतगण, गणमान्य व्यक्तिव परिवार के लोगों ने अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किये।

● आर्य समाज रूदौली, बाराबंकी के कोषाध्यक्ष श्री प्रेम हरि आर्य की माता जी धर्मपत्नी स्व. कन्हैयालाल आर्य पूर्व अध्यक्ष व कोषाध्यक्ष आर्य समाज रूद्रावली का दिनांक ०१ जून २०२४ को लखनऊ में देहावसान हो गया। उनका अन्तिम संस्कार सायं भैसाकुंड में तमाम परिजनों व इष्टमित्रों की उपस्थिति में किया गया।

माता जी धर्मपरायण व सात्विक विचार धारा की सरल महिला थी। वह अपने पीछे सम्पन्न परिवार छोड़ कर गई हैं।

आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा व सभी पदाधिकारियों ने दिवंगत आत्माओं को अपनी शोक संवेदनायें व्यक्त करते हुए उनकी सद्गति हेतु तथा परिजनों को यह असहनीय दुःख सहने करने की शक्ति देने की ईश्वर से प्रार्थना की है।

अर्जुनदेव चड्डा का देहान्त

आर्य समाज कोटा, राजस्थान के पदाधिकारी श्री अर्जुनदेव चड्डा का दिनांक २८ मई, २०२४ को सायं उनके निज निवास पर आकस्मिक देहान्त हो गया।

स्व. अर्जुनदेव चड्डा जीवन पर्यन्त महर्षि दयानन्द सरस्वती के उद्देश्यों व मन्तब्यों के लिए समर्पित रहे। आर्य समाज के कार्यों को करने का उनका अपना अलग तरीका व शैली थी। वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार के लिए अनेकों संस्कार शिविर, योग व संध्या आदि के शिविरों का आयोजन, असहाय व निर्बलों की सहायता, रक्तदान शिविर तथा सामाजिक पाखंड आदि के विरूद्ध जनजागरण अभियान चला कर लोगों को जागरूक करना, पशु-पक्षियों के लिए आहार व जल की व्यवस्था करना आदि उनकी आदत में शुमार था।

स्व. अर्जुनदेव चड्डा के निधन से आर्य जगत की अपूर्णनीय क्षति हुई है जिसकी भरपाई सम्भव नहीं है।

स्व. अर्जुनदेव चड्डा का अंत्येष्टि संस्कार वैदिक रीति से किया गया। जिसमें श्री विनय आर्य जी-महामंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली, श्री सतीश चड्डा जी-मंत्री केन्द्रीय आर्य सभा, श्री संदीप शर्मा जी-विधायक, कोटा दक्षिण सहित सैकड़ों आर्यजन प्रबुद्ध वर्ग व परिजन आदि ने नम आंखों से विदाई दी।

आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा सहित समस्त पदाधिकारीगण स्व. अर्जुनदेव चड्डा के निधन पर अपनी शोक संवेदनायें व्यक्त करते हुए सद्गति हेतु तथा परिवारिक सदस्यों को यह भारी आघात सहन करने की शक्ति देने की ईश्वर से प्रार्थना करते हैं।

पंजी०सं० आर.एन.आई.-२२४१/५७ -आर्यमित्र आर्यमित्र आर्यमित्र ०६ एवं १३ जून, २०२४ पोस्टल रजि.जी.पी.ओ. लखनऊ/एन.पी.-१४/२०१६-२१

एक प्रति ₹ ५.००

आर्य मित्र

नारायण स्वामी भवन, ५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ दूर./फैक्सः ०५२२-२२८६३२८
प्रधान-०९४१२६७८५७१, मंत्री-०९४१५३६५५७६, सम्पादक-९४५१८८१९७७
ई.मेल-apsabhaup86@gmail.com

सेवा में,
.....

पृष्ठ.....५ का शेष

१२/१/६१''। यजुर्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है ''सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातु उत्तानाया हृदयं यद् विकस्तम् अर्थात् उत्तान लेटी हुई भूमि का हृदय यदि क्षतिग्रस्त हो गया है तो मातरिश्वा वायु उसमें पुनः शक्ति-संधान कर दे -यजु० ११/३९''। मातरिश्वा वायु का अर्थ है अंतरिक्षसंचारी पवन, जो जल, तेज आदि अन्य प्राकृतिक तत्त्वों का भी उपलक्षक है। परन्तु यदि जल, वायु आदि ही प्रदूषित हो गए हों तो उनसे भूमि की क्षति-पूर्ति कैसे हो सकेगी?

४. अग्निहोत्र द्वारा पर्यावरण-शोधन

वैदिक संस्कृति में अग्निहोत्र या यज्ञ का बहुत महत्त्व है। प्रत्येक गृहस्थ एवं वानप्रस्थ के करने योग्य पंच यज्ञों में अग्निहोत्र का भी स्थान है, जिसे देवयज्ञ कहा जाता है। अग्निहोत्र यज्ञाग्नि में शुद्ध घृत एवं सुगन्धित, वायुशोधक, रोगनिवारक पदार्थों की आहुति द्वारा सम्पन्न किया जाता है। एक अग्निहोत्र वह है जो धार्मिक विधि-विधानों के साथ मन्त्रपाठपूर्वक होता है, दूसरे उसे भी अग्निहोत्र कह सकते हैं जिसमें मन्त्रपाठ आदि न करके विशुद्ध वैज्ञानिक या चिकित्साशास्त्रीय दृष्टि से अग्नि में वायुशोधक या रोग मिनाशक पदार्थों का होम किया जाता है। आयुर्वेद के चरक, बृहन्निघन्टुरत्नाकर, योगरत्नाकर, गदनिग्रह आदि ग्रन्थों में ऐसे कई योग वर्णित हैं, जिनकी आहुति अग्नि में देने से वायुमण्डल शुद्ध होता है तथा श्वास द्वारा धूनी अन्दर लेने से रोग दूर होते हैं। वेद में अनेक स्थानों पर अग्नि को पावक, अमीवचातन, पावकशोचिष, सपत्नदंभन आदि विशेषणों से विशेषित करके उसकी शोधकता प्रदर्शित की गई है। यज्ञ का फल चतुर्दिक् फैलता है (यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रा) -यजु० ८/६२। अग्निहोत्र ओषध का काम करता है (अग्निष्कृणोतु भेषजम्) -अथर्व० ६/१०६३। अग्निहोत्र से शरीर की न्यूनता पूर्ण होती है (अग्ने यन्मे तत्त्वा ऊनं तन्म आपृण) -यजु० ३/१७। अग्नि वायुमण्डल से समस्त दूषक तत्त्वों का उन्मूलन करता है (अग्निर्वृत्राणि दयते पुरुणि) -ऋ० १०/८०/२। वेद मनुष्यों को आदेश देता है ''आ जुहोता हविषा मर्जयध्वम् अर्थात् तुम अग्नि में शोधक द्रव्यों की आहुति देकर वायुमण्डल को शुद्ध करो -साम० ६३''।

अग्निहोत्र की अवश्यकर्तव्यता की ओर संकेत करते हुए वेद कहते हैं-

स्वाहा यज्ञं कृणोतन अर्थात् स्वाहापूर्वक यज्ञ करो -ऋ० १/१३/१२, सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन अर्थात् सुसमिद्ध अग्निज्वाला पर पिघले घी की आहुति दो -यजु० ३/२, अग्निमिन्धीत मर्त्यः अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि वह अग्नि प्रज्वलित करे -साम० ८२, सम्यकृचोऽग्निं सपर्यत अर्थात् सब मिलकर अग्निहोत्र किया करो -अथर्व० ३/३०/६।

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता।
प्रातः प्रातः गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनसस्य दाता।।

-अथर्व० १९/५५/३-४

अग्निहोत्र का समय सायं और प्रातः है। सायं किया हुआ अग्निहोत्र प्रातःकाल तक वायुमण्डल को प्रभावित करता रहता है और प्रातः किये गए अग्निहोत्र का प्रभाव सायंकाल तक वायुमण्डल पर पड़ता है।

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्त्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये।।

-यजु० २१/६

अग्निहोत्र ऐसी विशाल, दिव्य, दीप्तिमयी, निश्छिद्र, कल्याणदायिनी, अखण्डित, निश्चित रूप से आगे ले जानेवाली, विधिविधानरूप सुन्दर चप्पुओं वाली, निर्दोष, न चूनेवाली नौका है जो सदा यजमान की रक्षा ही करती है।

आयुर्यज्ञेन कल्पतां, प्राणो यज्ञेन कल्पतां, चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां,
श्रोत्रंयज्ञेन कल्पतां, वाग् यज्ञेन कल्पतां, मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पताम्।।

-यजु० १८/२९

अग्निहोत्र-रूप यज्ञ से आयु बढ़ती है, प्राण सबल होता है, चक्षु सशक्त होती है, श्रोत्र और वाणी सामर्थ्ययुक्त होते हैं, मन और आत्मा बलवान् बनते हैं।

ऋग्वेद में कहा है- सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति अर्थात् जो अग्निहोत्र करता है उसे सुवीर्य प्राप्त होता है, वह पुष्ट होता है -ऋ० ३/१०/३।

५. आंधी, वर्षा और सूर्य द्वारा पर्यावरण-शोधन

प्राकृतिक रूप से आंधी, वर्षा और सूर्य द्वारा कुछ अंशों में स्वतः प्रदूषण-निवारण होता रहता है।

वातस्य नु महिमानं रथस्य रुजन्नेति स्तनयन्नस्य घोषः।
दिविस्पृग् यात्यरुणानि कृण्वन्नुतो एति पृथिव्या रेणुमस्यन्।। -ऋ० १०/१६८/१

वायु-रथ की महिमा को देखो। यह बाधाओं को तोड़ता-फोड़ता हुआ चला आ रहा है। कैसा गरजता हुआ इसका घोष है! आकाश को छूता हुआ, दिक्प्रांतों को लाल करता हुआ, भूमि की धूल को उड़ाता हुआ वेग से जा रहा है।

मानसून पवन रूप मरुत् मेह बरसाते हैं - वपन्ति मरुतो मिहम् -ऋ० ८/७/४। ये वर्षा द्वारा प्रदूषण को दूर करते हैं।

आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थामामृता वयम्।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा।। -अथर्व० ३/३१/१

बदल की वृष्टि से हम उत्कृष्ट स्थिति को पा लेते हैं, सब पेड़-पौधे, पर्वत, भूप्रदेश धुलकर स्वच्छ हो जाते हैं, रोग दूर हो जाते हैं, प्राणियों की आयु लम्बी हो जाती है।

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च।
मां पुनीहि विश्वतः।। -यजु० १९/४३

प्रकृति में सूर्य भी प्रदूषण का निवारक है। वह अपने रश्मिजाल से तथा अपने द्वारा की जानेवाली वर्षा से पवित्रता प्रदान करता है।

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना।
तेनास्मद् विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुष्वप्न्यं सुव।।

-ऋ० १०/३७/४

सूर्य अपनी ज्योति से अन्धकार को बांधता है, समस्त अन्नाभाव को, अन्नाहुति को, रोग को और दुःस्वप्न को दूर करता है।

वेद में कहा है ''सा धा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि अर्थात् सूर्य अमृत बरसाता है -अथर्व० ६/१/३'', ''सूर्य यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः अर्थात् हे सूर्य, जो तेरा ताप है उससे तू उसे तपा डाल जो हमसे द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं -अथर्व० २/२१/१''।

अंत में उपसंहार-रूप में हम कह सकते हैं कि वायु, जल, भूमि, आकाश, अन्न आदि पर्यावरण के सभी पदार्थों की शुद्धि के लिए वेद भगवन् हमें जागरूक करते हैं तथा आई हुई अस्वच्छता को दूर करने का आदेश देते हैं। पर्यावरण की शुद्धि के लिए वेद भगवन् वनस्पति उगाना, अग्निहोत्र करना, विद्युत, अग्नि, सूर्य एवं ओषधियों का उपयोग करना आदि उपायों को सुझाते हैं।

।।आओ लौटें वेदों की ओर।।

वैदिक सिद्धान्तों के धनी योग के प्रति दृढ़ संकल्पी महाशय बेगराज सिंह आर्य का निधन

ग्राम पाली, जनपद-बागपद निवासी १०७ वर्षीय महाशय बेगराज सिंह आर्य दिनांक ३० मई, २०२४ को योगमय होकर नश्वर देह को त्याग मोक्षधाम चले गये।

स्व. महाशय बेगराज जी की माता जी का निधन बचपन में हो जाने के कारण जीवन काफी संघर्षपूर्ण रहा। आसरे के लिए बहन व बुआ के यहाँ रह कर कक्षा दो तक की शिक्षा प्राप्त की। शादी में ससुर स्व. मीर सिंह से कालजयी ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश प्राप्त होने के पश्चात् स्व. महाशय बेगराज जी की दिशा व दशा दोनों बदल गयी। वैदिक सिद्धान्तों व योग के प्रति दृढ़ता उनके जीवन पर्यन्त रही। साधारण कृषक होते हुए, योग के द्वारा जीवन के १०७ वर्ष बिना थके, बिना बीमार हुए दीर्घ जीवन जिये।

अल्प शिक्षित स्व. महाशय बेगराज जी ने शिक्षा के महत्व को समझा और ग्राम काठा व पाली के मध्य एक सन्यासी के सहयोग से गुरूकुल की स्थापना तथा बागपत में सम्राट पृथ्वीराज सिंह चौहान पी.जी. कालेज का निर्माण अपने अथक पुरूषार्थ से कराया। अपने बच्चों को उच्च शिक्षित कर, अधिकारी बनाया। पौत्र-पौत्री भी विदेशों में उच्च पदों पर आसीन हैं।

ऋषिवर दयानन्द के बताये वैदिक मार्ग पर चलकर योगमय दिनचर्या के द्वारा स्व. महाशय बेग राज सिंह आर्य ने सिद्ध कर दिया कि योग, आसन, प्राणायाम व यम-नियमों के द्वारा मनुष्य निरोगी रह कर सौ से अधिक वर्षों तक जीवित रह सकता है।

आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा व सभी अधिकारियों ने योग स्व. महाशय बेगराज सिंह आर्य के देहान्त पर दुःख प्रकट करते हुए उनके मोक्ष के लिए ईश्वर से प्रार्थना की है तथा परिवार के सदस्यों को यह दारुण दुःख सहन करने की शक्ति देने के लिए कामना करते हैं।

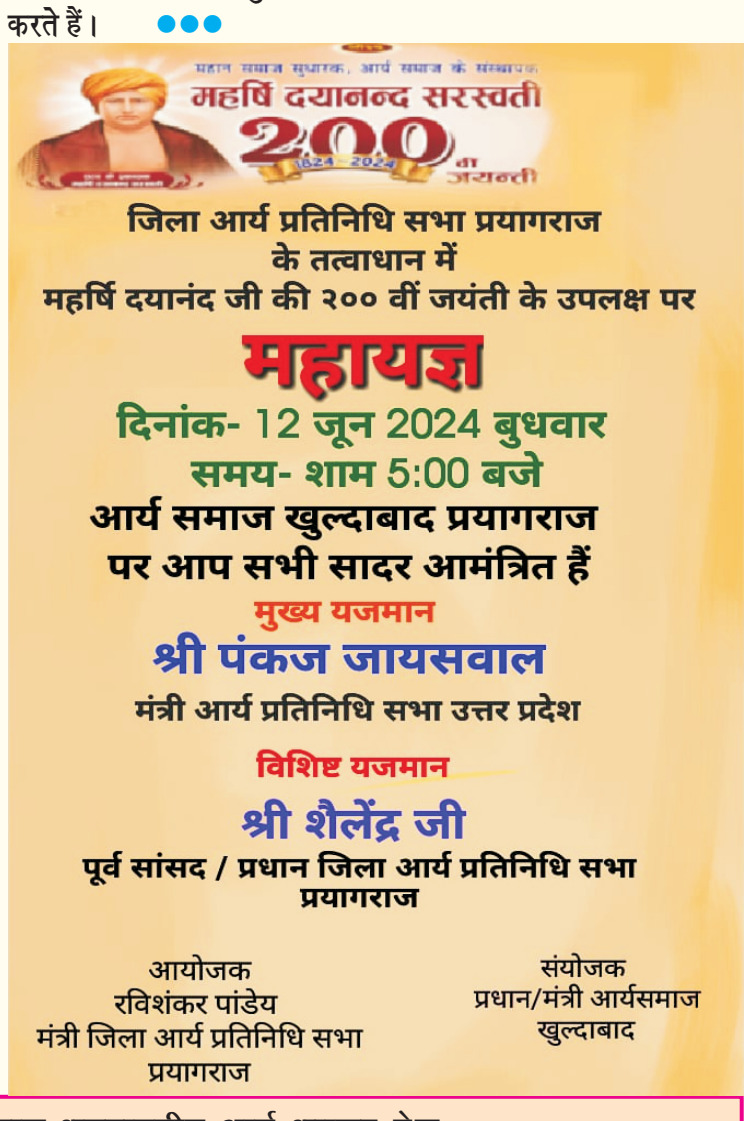

स्वामी–आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश सम्पादक–पंकज जायसवाल भगवानदीन आर्य भाष्कर प्रेस, 5–मीराबाई मार्ग, लखनऊ के लिए अस्थायी रूप में शुभम् आफ्सेट प्रिंटर्स, कैसरबाग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित
लेखों में वर्णित भाषा या भाव से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है–सम्पूर्ण विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय होगा।